प्रेम दर्शन

प्रवचन-क्रम

1. असंभव घटना.........................................................................................2
2. आनंद के क्षण....................................................................................18
3. प्रेम की अनंतता...............................................................................33
4. विद्रोही भगवान................................................................................48

प्रेम दर्शन
पहला प्रवचन

असंभव घटना

मेरे प्रिय आत्मन्!
और हर आदमी की जिंदगी रोज बुरी से बुरी होती जा रही है। लेकिन लोग कुछ
इस तरह कहते हैं, जैसे अंधेरा आज ही आ गया हो। अंधेरा सदा से है, और ऐसा नहीं है कि आदमी आज बुरा हो गया है; आदमी सदा से ही बुरा रहा है। लेकिन आज की बुराई दिखाई पड़ती है, पिछली बुराइयां छिप जाती हैं, खो जाती हैं और दिखाई नहीं पड़ती। और इतिहास के साथ एक बुनीयादी भूल हो जाती है और वह भूल यह है कि अतीत के तो अच्छे लोग याद रह जाते हैं और आज के सिर्फ बुरे लोग दिखाई पड़ते हैं। उनके बीच तुलना करने से कठिनाई हो जाती है।
राम याद हैं, बुद्ध याद हैं, महावीर याद हैं, कृष्ण याद हैं, उस जमाने
का साधारण आदमी कौन है उसका हमें कुछ भी पता नहीं। आज से दो हजार साल बाद न मेरी किसी को याद होगी, न आपकी किसी को याद होगी, एक आदमी हमारे बीच थे गांधी, उन्हें लोग याद रखेंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे कि गांधी का युग बड़ा धार्मिक युग रहा होगा--अहिंसा का, प्रेम का, सत्य का। झूठी होगी उनकी धारणा, गलत होगा उनका खयाल। गांधी हमारे प्रतिनिधि, रिप्रेजेंटेटिव नहीं हैं, गांधी अकेले हैं। हम उन जैसे नहीं ठीक उनसे विपरीत हैं। लेकिन वे याद रह जाएंगे और हमारे युग को उनका नाम दिया जाएगा, जो कि सरासर झूठ होगा। गांधी युग कहा जाएगा। युग हम बनाते हैं, गांधी नहीं। हम भूल जाएंगे और गांधी का युग हो जाएगा।
ऐसा ही हुआ है राम के साथ, बुद्ध के साथ, कृष्ण के साथ, महावीर के साथ।
आज हम कहते हैं कि महावीर के जमाने के लोग कितने अच्छे रहे होंगे? महावीर के कारण हम ऐसा कहते हैं। लेकिन महावीर प्रतिनिधि नहीं हैं, महावीर अकेले हैं। और इस बात को थोड़ा सोच लेना जरूरी है ताकि हम, आज की बीमारी आज की ही नहीं है सदा की ही है, यह समझ पाएं। अगर बीमारी सदा की है और हमने समझा कि आज की है, तो हम इलाज कभी भी नहीं कर पाएंगे। क्योंकि हम उस बीमारी की जड़ों में ही नहीं उतर सकेंगे। हम समझेंगे बीमारी सामायिक है। जब कि बीमारी सनातन है। बिमारी उतनी ही पुरानी है जितना पुराना आदमी है। और हम समझेंगे आज का युग ही खराब है। तो हम जो तरकीबें सोचेंगे बदलने की वे काम नहीं करेंगी। क्योंकि हमारा निदान ही गलत होगा। बीमारी कितनी पुरानी है बीमारी मिटाने के लिए पहली बात है जो जान लेनी चाहिए। लेकिन भूल हुई है। अतीत के संबंध में निरंतर भूल हो जाती है। उसके कारण हैं।
पहला कारण तो मैं कहना चाहता हूं कि पिछले जमाने के चमकते हुए लोग याद
रह जाते हैं और हम आज के अपने पड़ोसी से उनकी तुलना करते हैं। तो बहुत कठिनाई हो जाती है। उस जमाने का साधारण आदमी बिल्कुल भूल जाता है। साधारण आदमी आज ही जैसा था। जरा भी फर्क नहीं। जितनी चोरी आज है, जितनी बेईमानी आज है, जितना कपट है, उतना ही तब भी था। जरा भी कम नहीं। और जब मैं ऐसा कहता हूं तो मेरा कुछ मतलब है। बुद्ध सुबह से उठते हैं और सांझ तक लोगों को समझाते हैंः चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, दूसरे की स्त्री को लेकर मत भाग जाओ। या तो बुद्ध का दिमाग खराब होगा कि भले लोगों को ऐसी बातें समझा रहे हैं जो ये काम करते ही नहीं या लोग ऐसे रहे होंगे। चालीस साल तक अनवरत सुबह से सांझ तक बुद्ध ये ही बातें समझा रहे हैं। किनको समझा रहे होंगे? जिनको समझा रहे हैं वे लोग हमसे भिन्न नहीं हो सकते। क्योंकि बुद्ध की शिक्षाएं हमारे लिए आज भी काम की मालूम पड़ती हैं। वे हमारे जैसे लोग रहे होंगे, जिनके लिए वह काम की थीं। उसमें बहुत भेद नहीं हो सकता।
इन सारे बड़े पुरुषों को हम इतना आदर देते हैं, उसका भी यही कारण है। सिर्फ आदर उनको दिया जाता है जो अत्यंत न्यून होते हैं, अल्प होते हैं। उन्हें आदर नहीं दिया जाता जो बहुत होते हैं। अगर दुनिया में सज्जन बहुत हो जाएंगे, सज्जन को आदर मिलना बंद हो जाएगा। अगर दुनिया में महात्मा बहुत हो जाएंगे, फिर महात्मा को कोई पूछेगा नहीं। असल में महात्मा को पूछने के लिए चोरों की मौजूदगी बहुत जरूरी है। जो पूछते हैं, जो आदर देते हैं, वे

विपरीत होते हैं। इसीलिए पूछते हैं, इसीलिए आदर देते हैं। स्कूल में एक शिक्षक काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखता है। सफेद दिवाल पर भी लिख सकता है। लिख तो जाएगा लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। सफेद खड़िया से काले तख्ते पर लिखे तो ही दिखाई पड़ता है। अच्छा आदमी बुरे समाज के काले तख्ते पर ही दिखाई पड़ता है। नहीं तो दिखाई नहीं पड़ेगा।
महावीर, बुद्ध और कृष्ण और राम जो हमें दिखाई पड़ते हैं हजारों साल के बाद वह समाज की अंधेरी रात, उसके ऊपर चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। अंधेरी रात में तारे ज्यादा चमकते हैं। दिन में तारे खो नहीं जाते। दिन में तारे उतने ही होते हैं जितने रात में होते हैं लेकिन दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि सफेदी में तारा कैसे दिखाई पड़ेगा? खो जाता है। जिस दिन दुनिया अच्छी होगी सबसे पहले महात्मा खो जाएंगे, वे दिखाई नहीं पड़ेंगे। जब तक दुनिया बुरी है तब तक महात्मा दिखाई पड़ता रहेगा। इसलिए महात्मा के तो हित में है कि दुनिया बुरी रहे। समझाता है, बुराई को मिटाता है। लेकिन उसका अस्तित्व तो रह सकता है, लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ेगा।
अतीत में हमने दस-पांच बड़े नामों को याद रख लिया है। उसका कारण है कि हमने दस-पांच आदमी पैदा किए। बाकी सारी आदमियत बांझ थी। उससे कुछ पैदा नहीं हुआ। आदमी सदा से ऐसा ही है। इसलिए कुछ ऐसा नहीं है कि आज ही अंधेरा हो गया है, और आज ही धर्म खो गया है, और आज ही लोग परमात्मा को याद नहीं कर रहे हैं, कुछ ऐसा नहीं है कि कलियुग की वजह से सब कुछ हो रहा है। सतयुग में सब अच्छा था? जैसा आदमी आज है वैसा सदा था। इसलिए बीमारी से लड़ना बहुत गहरे पड़ेगा।
कोई सोचता हो कि अंग्रेजी की शिक्षा के कारण लोग बिगड़ गए हैं, तो गलत सोचता है। जब अंग्रेजी का पता न था तब भी लोग ऐसे थे। कोई सोचता हो कि फिल्मों के कारण लोग बिगड़ गए हैं, तो गलत सोचता है। क्योंकि फिल्में जब न थीं तब भी आदमी ऐसा ही था।
इसलिए मैं कहता हूं कि बीमारी की गहराई और दूरी और लंबाई समझ लेनी जरूरी है। नहीं तो लोग ऐसे उपचार बताते हैं जिनको अगर हम हल भी कर लें, अगर सारे हिंदुस्तान के सिनेमा घर बंद कर दिए जाएं, तो भी आदमी में रत्ती भर फर्क नहीं पड़ेगा। बल्कि डर है कि आदमी शायद और बुरा हो जाए। डर इसलिए है कि सिनेमा की बुराई को देख कर खुद बुरा करने का मन थोड़ा कम हो जाता है। राहत मिल जाती है।
रास्ते पर अगर दो आदमी लड़ रहे हों तो हम हजार काम छोड़ कर वहां रुक जाते हैं। देख लेते हैं क्या हो रहा है? ऐसे ऊपर से कहते हैं कि भाई लड़ो मत, लेकिन भीतर भगवान से प्रार्थना करते हैं कि कुछ हो ही जाए। और अगर वे दोनों लड़ने वाले मान लें कि आप सब कहते हैं तो नहीं लड़ते हैं, जाते हैं, तो हम उदास वापस लौटेंगे। लेकिन खून टपक जाए, पत्थर चल जाए, छुरी भुंक जाए, तो हम बहुत बुरा कहते हुए लौटेंगे कि लोग बड़े बुरे हो गए हैं, क्या हो रहा है यह? लेकिन हमारी आंखों में चमक होगी, चेहरे पर खुशी होगी। भीतर ऐसा होगा कि कुछ देखा, कुछ हुआ। वे जो दो आदमी लड़ते हैं उनको लड़ते देख कर हमारी लड़ने की वृत्ति भी थोड़ी निकलती है। इसके तो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।
पहला महायुद्ध जब हुआ तो बड़ी हैरानी हुई दुनिया के विचारशील लोगों को
कि युद्ध जब तक चला तब तक दुनिया में चोरियां कम हुईं, हत्याएं कम हुईं, आत्महत्याएं कम हुईं। लोग पागल भी कम हुए। संख्या कम हो गई। बड़ी हैरानी की बात है। चोरों को युद्ध से क्या लेना-देना? और चोरों को अगर लेना-देना भी हो, तो पागल भी क्या देख कर पागल होते हैं? कि अभी युद्ध चल रहा है अभी पागल नहीं होना चाहिए। लेकिन कुछ समझ में नहीं आ सका। दूसरे महायुद्ध में तो और घबड़ाहट बढ़ गई। क्योंकि दूसरे महायुद्ध में तो एकदम सारी दुनिया में पापों का, अपराधों का, हत्याओं का, आत्महत्याओं का, पागलों का, मानसिक बीमारियों का, सबका अनुपात नीचे गिर गया। तब समझ-सोच करना पड़ा। तब पता चला कि कारण हैं। कारण यह है कि जब सारा समाज सामूहिक रूप से पागल हो गया हो तो प्राइवेट पागल होने की कोई जरूरत नहीं है। जब सारी दुनिया में इतनी हत्याएं हो रही हैं तो मैं अलग से किसी की हत्या करने जाऊं इससे कोई मतलब

नहीं। सुबह अखबार पढ़ लेता हूं और राहत मिल जाती है। रेडियो सुन लेता हूं और राहत मिल जाती है।
सिनेमा बंद कर देने से लोग अच्छे हो जाएंगे, ऐसा अगर साधु-संत समझाते हों, तो उन साधु-संतों को आदमी की बुराई का कुछ भी पता नहीं। और कोई अगर समझाता हो कि अंग्रेजी की शिक्षा से और पश्चिम के संपर्क से आदमी बिगड़ गया है, तो बिल्कुल ही गलत समझाता है। सारी शिक्षा हम बंद कर दें और पश्चिम से सारा संबंध तोड़ दें और बैलगाड़ी की दुनिया में वापस लौट जाएं, तो भी अच्छा नहीं हो जाएगा आदमी, क्योंकि रोग बहुत गहरा है।
बैलगाड़ी के दिन थे तब भी आदमी ऐसा ही था। लेकिन कुछ बातों में फर्क पड़ा है। पहला तो फर्क यह पड़ा है, सबसे बड़ा जो फर्क पड़ा है वह यह पड़ा है कि हमें सारी दुनिया की खबरें एक साथ मिलने लगी हैं जो पहले नहीं मिलती थीं। और ध्यान रहे कि हमारा रस बुराई में है तो बुराई की खबरें ही हमें मिल पाती हैं, भलाई की खबरें नहीं मिल पातीं। अगर रास्ते पर मैं किसी को छुरा मार दूं तो भावनगर के अखबार खबर छापेंगे। लेकिन रास्ते पर किसी गिरे को उठा लूं तो भावनगर के अखबारों में कोई खबर नहीं छपेगी।
दुनिया में भलाई अब भी उतनी ही है जितनी पहले थी, लेकिन उसकी कोई खबर नहीं है। क्योंकि भलाई को सुनने को, पढ़ने को कोई उत्सुक नहीं है। वह कभी भी नहीं था। जब भी दो आदमी मिलते हैं तो किसी की बुराई करते हैं। अगर बुराई करने को आदमी न हो तो बातचीत का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। बातचीत ही नहीं हो पाती। दस आदमी मिलते हैं, तो पहले औपचारिक बातें होती हैं, फिर किसी की बुराई शुरू हो जाती है। दूसरे में बुरा खोज लेने से एक रस है, और वह रस यह है कि जब हमें दूसरे में बुराई मिल जाती है तो हमें एक रस तो यह मिलता है कि हमें यह राहत मिल जाती है कि हम हीं बुरे नहीं हैं और लोग भी बुरे हैं। और लोग और भी ज्यादा बुरे हैं। इसलिए हम चारों तरफ बुराई की खोज करते हैं, ताकि हमारी बुराई की जो पीड़ा है, वह जो कांटे की तरह चुभती है वह कम हो जाए। जब हमें ऐसा पता चले कि सभी लोग बीमार हैं तो फिर बीमारी इतनी दुखद नहीं रह जाती।
अगर मुझे पता चले कि गांव में सब लोग स्वस्थ हैं। मैं ही अकेला बीमार हूं। तो बीमारी से भी ज्यादा यह बात दुख देती है कि और सारे लोग स्वस्थ हैं। मैं ही सिर्फ बीमार हूं। लेकिन अगर पता चल जाए कि सारे लोग बीमार हैं तो, तो फिर बीमारी का जो दंश है, जो पीड़ा है, वह कम हो जाती है। और अगर यह पता चल जाए कि मुझसे भी ज्यादा बीमार हैं, तब अपनी बीमारी में भी स्वास्थ्य दिखाई पड़ने लगता है। क्योंकि हम कम बीमार हैं।
मैंने सुना है, एक यहूदी फकीर है, लिएबमेन। उसने लिखा है कि मैं बहुत परेशान था। सभी परेशान हैं उसी परेशानी से। परेशानी यह थी कि बड़ा जीवन में दुख था। किसके जीवन में सुख है? लेकिन लिएबमेन ने लिखा है कि मैं इसलिए और भी ज्यादा दुखी था कि दूसरे लोग सुखी मालूम होते थे और रास्ते पर लोग हंसते हुए मिलते थे। मैं किसी से पूछता कि कैसे हो? तो वह कहता कि बहुत अच्छा। सभी लोग कहते हैं। लिएबमेन सोचता है कि मैं तो कभी भी इस हालत में नहीं हुआ कि कह सकूं कि बहुत अच्छा। सारी दुनिया सुख में है, मैं ही सिर्फ एक दुख में हूं। लोगों के चेहरे देख कर बड़ी भूल पैदा हो जाती है। और हमें लोगों के चेहरे दिखाई पड़ते हैं और अपनी आत्मा दिखाई पड़ती है इसलिए तुलना हमेशा मुश्किल क्यों होती है? हम भीतर असलियत को देख लेते हैं और दूसरे आदमी का अभिनय दिखाई पड़ता है।
रास्ते के लोग हंसते हुए दिखाई पड़ते हैं, मुस्कुराते हुए दिखाई पड़ते हैं। पति-पत्नी को रास्ते पर चलते देखें तो ऐसा लगता है स्वर्ग में रहते होंगे। और अगर घर में कभी उनको पता न हो और झांक लें तो पता चलेगा कि नरक की उन्होंने पूरी व्यवस्था कर रखी है। एक, चेहरे हैं जो हम बाहर से लगाए हुए हैं, वे हमने, वे भी हमने इसलिए लगाए हैं कि भीतर की हालतें ऐसी हैं कि कोई देख ले तो बड़ा अपमानजनक होगा। इसलिए चेहरे लगा लिए। उनसे हम बाहर काम चला लेते हैं। घर लौट कर असली आदमी हो जाते हैं।
लिएबमेन ने देखा, सब लोग हंसते हैं, सब खुश हैं, सब सुखी हैं, मैं अकेला दुखी हूं। उसने एक रात भगवान से प्रार्थना की कि मैं इतना दुखी हूं, मेरे

से नाराजगी क्या है? और फिर मैं ज्यादा नहीं मांगता। मैं उतनी ही खुशी मांगता हूं जितनी तूने दूसरों को दी है। अगर यह भी ज्यादा है तो मैं किसी दूसरे से अपना दुख बदलने को राजी हूं। मेरा दुख किसी और को दे दें, किसी को भी। इस गांव में किसी को भी मेरा दुख दे दें और किसी का भी दुख मैं बदलने को राजी हूं। लेकिन अब मेरा दुख का बोझढोना बहुत कठिन है।
सो गया रोता हुआ। आंख में आंसू थे। रात उसने एक सपना देखा, सपना देखा
कि एक बड़ा भारी भवन है, गांव के सारे लोग इकट्ठे हुए हैं और हर आदमी अपने- अपने दुख की गठरी अपने कंधे पर लेकर चला आ रहा है। आज उसने पहली दफा लोगों के दुख देखे। बड़ी हैरानी मालूम पड़ी। कोई भी गठरी अपने से छोटी न दिखाई पड़ती थी। इसके बाद आवाज सुनाई पड़ी कि सब अपनी गठरियां खूंटियों पर टांग दें--दुखों की गठरियां--और फिर जिसको जो चुनना हो वह उसकी गठरी चुन ले। दौड़ कर उसने अपनी गठरी टांगी। उसने देखा कि सारे लोग दौड़ कर टांग रहे हैं, वह तो सोचता था कि बाकी लोग खुश हैं। लेकिन वे भी अपने दुख से छूटने को आतुर थे। फिर दूसरी आवाज आई कि अब जिसको जिसकी गठरी चुननी हो वह चुन ले। लिएबमेन ने जब गठरियां टंगी देखीं तो वह भागा अपनी गठरी की तरफ कि अपनी वापस उठा ले, कोई और न उठा ले। क्योंकि अपने कम से कम पहचाने हुए दुख तो हैं उसके भीतर, जाने-माने। दूसरों की गठरियां भी बड़ी दिखाई पड़ती हैं और पता नहीं कैसे दुख हों, जिनसे कोई पहचान भी नहीं। और उसने बड़ी घबड़ाहट में दौड़ कर अपनी गठरी उठा कर चारों तरफ देखा। और देखा कि हरेक ने अपनी गठरी उठा ली। उसने पूछा, बात क्या है? उन्होंने कहाः अपनी गठरी कम से कम जानी-मानी, पहचानी तो है। सोचते थे हम भी कि दूसरों से दुख बदल लें। लेकिन दूसरों के दुख कभी देखे न थे। दूसरों की हंसियां देखीं तो यह झूठी थीं और अपने दुख देखे थे जो सच्चे थे। और दोनों के बीच तुलना की थी, इसलिए कठिनाई हो गई। चारों तरफ हम दुख देखना चाहते हैं ताकि अपना दुख हलका हो जाए। बुराई देखना चाहते हैं ताकि अपनी बुराई हलकी हो जाए। चारों तरफ कुरूपता देखना चाहते हैं ताकि अपनी कुरूपता, अपनी अग्लीनेस दिखाई न पड़े, ताकि हम सुंदर, स्वस्थ, अच्छे मालूम पड़ें। आदमी सदा से यह करता रहा। लेकिन नये युग में एक बात हुई है कि हमारे पास बुराई को देखने के साधन बहुत उपलब्ध हो गए हैं, जो कभी भी न थे। अखबार हैं, रेडियो हैं। सुबह से सारी दुनिया की बीमारियों की खबरें घर ले आते हैं। आप सुबह से देखते हैं और कहते हैं, दुनिया बहुत बुरी हो गई। दुनिया ऐसी ही थी। सिर्फ अखबार न थे जो खबर ले आते। और लिखना-पढ़ना इतना मुश्किल था कि अच्छी बातें ही नहीं लिखी जा पाती थीं तो बुरी बातें लिखने के लिए तो कोई उपाय ही नहीं था। इसलिए थोड़ी सी बातें जो लिखी जा सकती थीं, बचाई जा सकती थीं, वे हमारे पास आ गई हैं।
यह मैं इसलिए नहीं कह रहा हूं कि पुराने आदमी से मेरा कोई विरोध है।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि नये आदमी की बीमारी नये आदमी की ही बीमारी नहीं है आदमी की बीमारी है। यह हम समझ पाएं तब शायद रास्ता भी खोजा जा सके। अगर हम रोज कहते हैं कि लोग अधार्मिक होते जा रहे हैं। लोग कब धार्मिक थे? कोई उल्लेख तो नहीं मिलता कि लोग कभी धार्मिक थे।
लाओत्सु से पहले चीन में कोई छह हजार वर्ष पुरानी किताब है। उस किताब
की भूमिका को मैं पढ़ता था, तो मैं दंग रह गया। वह भूमिका ऐसी है जैसे कि आज के ही अखबार में एडिटोरियल लिखा हो। उस भूमिका में लिखा है कि लोग भ्रष्ट हो गए हैं, पापी हो गए हैं, भ्रष्टाचारी हो गए हैं, बुरे हो गए हैं। पहले के लोग बहुत धार्मिक थे। आजकल के लोग बहुत अधार्मिक हो गए हैं। छह हजार साल पुरानी किताब भी यह लिखती है कि पहले के लोग अच्छे थे। आज के लोग बुरे हो गए हैं। अब पूछना जरूरी है कि यह पहले के लोग फिर कब थे? और अब तक दुनिया में एक भी किताब में नहीं है जो यह कहती हो कि आज के लोग अच्छे हैं। एक भी किताब नहीं है सारे जगत में। सब किताबें कहती हैं कि पहले के लोग अच्छे थे। आज के लोग खराब हो गए हैं। एक किताब नहीं है जो यह कहती हो कि यह समय अच्छा है, आनंद का है। सब किताबें कहती हैं पहले के दिन बहुत अच्छे थे, अब तो दिन बहुत बुरे हो गए हैं।
हर बाप यही कहता है कि कहां वे बातें जो हमने देखीं। बेटा सुनता है। बड़े होकर वह भी अपने बेटे से कहता है कि कहां वे बातें जो हमने देखीं। बेटा

सुनता है। वह भी अपने बेटे से कहता चला जाएगा कि कहां वे बातें जो हमने देखीं। ये बातें किसी ने कभी देखी थीं? ये दिन अच्छे कब थे? ये दिन अच्छे कभी भी न थे। आदमी ऐसा ही था। अधार्मिक ही था। लेकिन एक फर्क पड़ा है, और वह फर्क यह पड़ा है कि पुराना अधार्मिक आदमी भी धार्मिक होने का ढोंग कर लेता था। नये आदमी को ढोंग करना मुश्किल हो गया।
ढोंग टूट गया है। हिपोक्रेसी टूट गई है। पाखंड टूट गया है। पुराना आदमी तिलक लगा लेता, चोटी बड़ी कर लेता, समझता कि धार्मिक हो गया है। नये आदमी की समझ के बाहर है कि तिलक लगाने से, चोटी बढ़ाने से धार्मिक कोई कैसे हो जाएगा? और अगर पक्का भी पता चल जाए कि चोटी से कोई केमिकल परिवर्तन हो जाते हैं, और तिलक लगाने से कोई आत्मा बदल जाती है, तो भी नया आदमी कहेगा कि इतना सस्ता परिवर्तन जो चोटी बढ़ाने से और तिलक लगाने से पैदा होता हो कुछ मतलब का नहीं मालूम पड़ता। इतना सस्ता परिवर्तन नहीं हो सकता है।
पुरानी दुनिया में धार्मिक होने के ढोंग खोजे थे, वे सब टूट गए हैं। धर्म नहीं टूटा है। धर्म कभी था ही नहीं कि टूट जाए। हां, धर्म के ढोंग थे वे सब टूट गए हैं। आज कोई मंदिर जाता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, तो हम सोचते हैं, लोग बड़े अधार्मिक हो गए हैं। लेकिन जो लोग मंदिर जाते थे, वे धार्मिक थे? मंदिर जाने से धार्मिक होने का कोई संबंध है? मंदिर जाने से धार्मिक होने का कोई भी संबंध नहीं। धार्मिक आदमी जहां भी हो वहीं मंदिर अनुभव करता है। ऐसा तो हो सकता है कि धार्मिक आदमी जहां बैठे वहीं मंदिर अनुभव करे। लेकिन इससे कोई संबंध नहीं है कि धार्मिक आदमी मंदिर जाए। मंदिर जाने से कोई संबंध धार्मिक होने का नहीं हो सकता है। मंदिर आदमी के बनाए हुए हैं। मूर्तियां आदमियों की निर्मित की गईं। वहां हम अपनी ही बनाई मूर्तियों के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हैं।
अगर किसी ग्रह पर, उपग्रह पर किसी चांद-तारे पर जीवन होगा और वे हमें नीचे झांक कर देखते होंगे तो बहुत हैरान होते होंगे। घर में छोटे बच्चे गुड्डा-गुड्डियों के विवाह करते हैं तो बड़े-बूढ़े हंसते हैं और कहते हैं कि बच्चे हैं। फिर बड़े बूढ़े राम-सीता का विवाह करते हुए देखे जाते हैं और बच्चे अगर हंस सकते हों तो हंस कर कहें और कहें कि बूढ़े हैं, सठिया गए हैं, दिमाग खराब हो गया है। धार्मिक होने से, धार्मिक क्रांति से किसी के मंदिर जाने का, किसी की मूर्ति की पूजा का कोई भी संबंध नहीं है, लेकिन ये सारे पाखंड आज अचानक आकर उखड़ गए हैं, टूट गए हैं। आज सब जगह दरारें पड़ गई हैं और तब हमें ऐसा लगता है कि लोग अधार्मिक हुए जा रहे हैं। मेरी अपनी समझ और है। मेरी समझ यह है कि धर्म का पाखंड जिस दिन पूरी तरह टूट जाएगा, उसी दिन आदमी के धार्मिक होने की पहली संभावना शुरू होगी। क्योंकि जब तक हम धोखे में रहते हैं, जब तक हम धोखे की बातें खड़ी कर लेते हैं, तब तक बहुत कठिनाई है। क्योंकि तब तक सत्य की खोज नहीं हो सकती।
धर्म क्या है? इसकी खोज होनी कठिन हो गई, क्योंकि हमने धर्म के नाम पर कुछ ऐसे काम इकट्ठे कर लिए जिनसे धर्म का कोई भी संबंध नहीं। अब एक आदमी अगर बैठ कर राम-राम, राम-राम जपता रहे; राम बड़ा प्यारा नाम है, लेकिन जपने से कोई मतलब नहीं। अभी मैं एक गांव में गया था, तो वहां एक सज्जन, कहना चाहिए, मेरे हिसाब से तो नहीं कहना चाहिए, लेकिन ऐसे वे सज्जन हैं, उन्होंने बड़ा एक काम किया है, उन्होंने एक बड़ा पुस्तकालय बनाया है, जिसमें हजारों किताबों में सिर्फ राम-राम, राम-राम लिखवा कर रखवा दिया है। वहां दस-पचास लोग दिन भर सुबह से शाम तक राम-राम लिखने का काम कर रहे हैं। उनके, वह कई अरब नाम उन्होंने लिखवा कर, वह लाइब्रेरी बड़ी होती चली जाती है। हिंदुस्तान भर में कई स्त्रियां, पुरुष घरों में बैठे राम-राम लिख कर वहां पोथियां भेजते रहते हैं, वे उनको इकट्ठा करते जाते हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि आप देखने चलिए, आप बड़े प्रसन्न होंगे। मैंने कहा कि मैं प्रसन्न नहीं होऊंगा, मैं एकदम दुखी हो जाऊंगा। उन्होंने कहाः क्यों? अरबों-खरबों राम-नाम लिखवा कर रख लिए हैं। मैंने कहा कि तुम कितने ही लिखवा कर रख लो, सिर्फ बच्चों के काम में जो कॉपियां आ सकती थीं वह तुम खराब कर रहे हो और कुछ भी नहीं कर रहे हो। और अगर कहीं राम होगा तो मरने के बाद मिल गए तो वह भी तुमसे कहेगा कि तुमने बहुत अपराध किया है। जब बच्चों के पास किताबें न

थीं पढ़ने को तब तुमने ये कॉपियां खराब क्यों की? और राम-नाम लिखने से कितनी ही बार लिखने से क्या हो सकता है?
लेकिन नहीं, पहले वह आदमी धार्मिक समझा जाता है, अभी भी समझा जा रहा है। लेकिन बीस साल बाद बहुत मुश्किल है। ऐसा आदमी अगर हमें मिलेगा तो अपराधी हो जाएगा बीस साल बाद। क्रिमिनल एक्ट। और पचास साल बाद अगर हम इस आदमी को मनोचिकित्सक के पास इलाज के लिए ले जाएं तो हैरानी नहीं होगी कि इसका दिमाग खराब हो गया है। यह किताबें खराब करता है। राम-राम लिखता चला जाता है। राम बड़ा प्यारा नाम है, लेकिन किताबों पर गोदने से कोई आदमी धार्मिक नहीं हो सकता, लेकिन हमें धार्मिक दिखाई पड़ रहा है। एक आदमी माला फेर रहा है बैठ कर घंटे तक, तो हमें धार्मिक मालूम होता है, क्योंकि हमारे दिमाग में एक छाप है कि यह माला की गुरिए फेरना एक धार्मिक कृत्य है। लेकिन धर्म से, और किसी माला की गुरिए फेरने से कोई भी तो संबंध नहीं है। तिब्बत में हमसे ज्यादा होशियार लोग हैं, उन्होंने प्रेयर व्हील बना लिया है। वे माला फेरते नहीं। एक सौ आठ स्पोक लगा दिए हैं एक चके में। चरखे जैसा चक्का बना लिया है। एक-एक स्पोक को उन्होंने एक मंत्र लिख दिया है और एक धक्का मार देते हैं। वह अपना दस-पांच चक्कर लगा लेता है। जितने चक्कर लग जाते हैं उतने उन्हें एक सौ आठ मंत्रों का लाभ उन्हें मिल जाता है। तो दुकान पर बैठे माला अलग से फेरने के लिए समय भी नहीं निकालना पड़ता। आदमी की कनिंगनेस, चालाकी की भी सीमाएं नहीं हैं। दुकान पर अपना काम कर रहे हैं उन्हें मौका मिला एक धक्का उसमें मार दिया।
एक लामा को मैं मिलने आया था, तो मैंने कहा, कि तुम बड़े पागल हो। प्लग लगा कर बिजली में लगा दो, अब तुम्हें धक्का मारने की भी जरूरत नहीं, वह चलता ही रहेगा। लेकिन इससे कोई धार्मिक हो जाएगा?
धार्मिक होना एक बड़ी क्रांति है पूरे जीवन की, आमूल चेतना की। लेकिन
इन कृत्यों से धार्मिक होने का कोई भी संबंध नहीं है। पर यह आदमी धार्मिक अब तक था, तो एक भ्रम था कि दुनिया धार्मिक है। लेकिन अगर हम लौट कर देखें, अगर दुनिया धार्मिक थी तो तीन हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध कैसे हुए? तीन हजार साल में पंद्रह हजार युद्धों की कथा है। इतनी हत्याएं, इतनी लूट, इतनी खसोट कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह पुरानी दुनिया धार्मिक थी तो फिर यह सब कैसे हुआ? यह पुरानी दुनिया अगर धार्मिक थी तो इस धार्मिक दुनिया से यह अधार्मिक दुनिया पैदा कैसे हो गई? यह भी थोड़ा ध्यान रखना जरूरी है कि बेटे आसमान से पैदा नहीं होते, मां-बाप से पैदा होते हैं। और बेटे जो कुछ लाते हैं वह मां-बाप में अगर छिपा न रहा हो तो नहीं ला सकते हैं। उपाय नहीं है लाने का। फल से हम वृक्ष की पहचान कर लेते हैं। आज की दुनिया के सारे आज तक के इतिहास की पहचान है, वह खबर देती है कि कहां से यह दुनिया आई है। ये आसमान से नहीं उतर आते हैं लोग।
लेकिन एक फर्क पड़ा है और वह फर्क यह नहीं है कि धर्म नष्ट हो गया। धर्म
था ही नहीं। कुछ थोड़े से लोग दुनिया में धार्मिक हुए हैं। मनुष्यता अब तक धार्मिक नहीं हो पाई है। समाज अब तक धार्मिक नहीं हो पाया है। तो धर्म के टूटने का तो डर ही नहीं है। हां, लेकिन धर्म के नाम पर एक पाखंड था, एक हिपोक्रसी थी, एक बहुत बड़ा धोखे का जाल था जो सारी दुनिया में फैला हुआ था। वह जाल धीरे-धीरे टूटना शुरू हो गया। वह जगह-जगह से टूट गया। उसमें जगह-जगह से छेद पड़ गए। वह टूट जाने के कारण एक ऐसी बात प्रतीत होने लगी है कि दुनिया अधार्मिक हो गई। नहीं, ऐसा नहीं हुआ है। बल्कि मेरी अपनी दृष्टि में हमारा यह जो बोध है कि हम अधार्मिक हैं, यह बोध बहुत कीमती है, धार्मिक होने के लिए बहुत मूल्यवान है।
अगर किसी आदमी को स्वस्थ होना हो, तो उसे यह पता चलना बहुत जरूरी है कि
वह बीमार है। अगर बीमार किसी तरह के सपने में जीता हो और समझता हो कि मैं स्वस्थ हूं, तब फिर बहुत कठिनाई है। लेकिन बीमार को पता चल जाए कि मैं बीमार हूं, तो फिर बीमारी से लड़ना पड़ेगा, बीमारी तोड़नी पड़ेगी, बदलनी पड़ेगी।
मेरी दृष्टि में इस बीसवीं सदी में आकर एक बहुत कीमती घटना घटी है और
वह यह कि हम आदमी की असली तस्वीर को पहली दफा पूरी तरह देखने में समर्थ हो

पा रहे हैं। नहीं तो आदमी ने अपनी तस्वीर में बहुत तरह के ढोंग रच रखे थे और उनसे कभी पता नहीं चलता था कि वह आदमी कैसा है। उस ढोंग के कारण दिखाई ही नहीं पड़ता था। असली आदमी की खबर ही नहीं मिल पाती थी। खुद को भी खबर नहीं मिलती थी कि असली आदमी क्या था। अगर मुझे संन्यासी होना होता पुरानी दुनिया में तो काफी था कि मैं गेरुएं कपड़े पहन लूं और संन्यासी हो जाऊं। आज भी कुछ लोग सिर्फ गेरुए कपड़े पहन कर संन्यासी हो रहे हैं। हिंदुस्तान में पचास लाख से ऊपर संन्यासी हैं। जिस देश में पचास लाख संन्यासी हों, उस देश की जिंदगी कुछ और होनी चाहिए। सुगंध कुछ और होनी चाहिए। लेकिन आज हिंदुस्तान से ज्यादा बेईमान, हिंदुस्तान से ज्यादा पतित, हिंदुस्तान से ज्यादा परेशान पृथ्वी पर कोई मुल्क नहीं है।
पचास हजार संन्यासियों की मौजूदगी इस मुल्क को तो जैसे पारस सोना बना
दे लोहे को। ऐसे पचास हजार संन्यासी जिस देश में हों उस देश की तो जिंदगी और हो जानी चाहिए। सुगंध और चमक आ जानी चाहिए। लेकिन वह नहीं आ रही है। उसका कारण है कि जिसे हम संन्यासी कहते हैं वह पुराना ढोंग है। वह सिर्फ कपड़े बदलने का नाम है। वह सिर्फ तोतों जैसी रटी हुई पुरानी बातों को दोहरा देने का काम है। वह सिर्फ आरोपित, इंपोज्ड, ऊपर से थोपा गया संन्यास है। वह संन्यासी बना हुआ है। बने हुए का मतलब उसने कोशिश कर-कर के वह संन्यासी हो गया है। अब कोई आदमी दुनिया में कोशिश कर-कर के संन्यासी हो सकता है? और अगर हो जाएगा तो सिर्फ अभिनय कर सकता है।
मैं एक गांव के पास से गुजरता था। एक मेरे मित्र उस जंगल में जाकर रहने लगे थे। तो मैं करीब से गुजरता था, तो उनका झोपड़ा पड़ता था, मैंने कहा, जाकर देख आऊं। गाड़ी रोक कर मैं उतर कर गया। वे एक पहाड़ी एकांत में संन्यासी होकर रह रहे थे। खिड़की से मैंने देखा तो वे नंगे भीतर टहल रहे हैं। वस्त्र नहीं पहने हुए हैं। फिर मैंने दरवाजे पर जाकर दरवाजा खटखटाया और वे आए तो चादर लपेट कर आए। तो मैंने उनसे पूछा कि जहां तक मुझसे अगर गलती नहीं हुई है तो खिड़की से आप मुझे दिखाई पड़े कि नग्न हैं। उन्होंने कहाः हां, मैं नंगे रहने का अभ्यास कर रहा हूं। मैंने कहाः अभ्यास नंगे रहने का? सुना ही नहीं कि महावीर ने कभी नंगे रहने का अभ्यास किया हो? चित्त सहज हो गया था, कपड़े गिर गए थे। पता ही नहीं चला कि वे कब नंगे हो गए। अगर पता चला हो तो नंगापन झूठा हो जाएगा।
एक चित्त की सरलता है कि शरीर में फिर छिपाने को कुछ नहीं मालूम पड़ा होगा, कपड़े गिर गए होंगे। यह तो समझ में आ सकता है। लेकिन एक आदमी अभ्यास कर रहा है नंगे होने का। तो मैंने उनसे कहाः संन्यासी होना है कि किसी सर्कस में भरती होना है? अभ्यास हो जाएगा और बड़ा खतरा यही है कि सफल हो जाओगे। उन्होंने कहा कि पहले दो-चार मित्रों के पास नंगा पहुंचूंगा। फिर थोड़े छोटे गांव में। फिर बड़ी राजधानी में। धीरे-धीरे अभ्यास हो जाएगा। अभ्यास तो हो ही जाएगा। अभ्यास तो कुछ भी हो सकता है। नंगे होने का भी अभ्यास हो सकता है। लेकिन उस नग्नता को उपलब्ध करना बात दूसरी है; जो अभ्यास से नहीं निर्दोष होने से आती है, इनोसेंट होने से आती है। और ध्यान रहे कि इनोसेंट माइंड और कल्टीवेटिड माइंड, निर्दोष चित्त और अभ्यासी चित्त बिल्कुल उलटे होते हैं।
अभ्यासी चित्त बहुत जटिल होता है। वह इंतजाम कर रहा है। वह नंगे होने
का इंतजाम कर रहा है। वह निर्दोष नहीं हो रहा है, नंगे होने का इंतजाम कर रहा है। वह इंतजाम कर लेगा। ऐसी क्या कठिनाई है, आदमी नंगा हो सकता है। लेकिन ऐसा जो एक पुराना जगत था, जिसमें संन्यास को, धर्म को, प्रार्थना को, पूजा को, सबको रिचुअल और क्रियाकांड में बदल दिया था, वह टूट रहा है। इसलिए डर नहीं जाने की जरूरत है कि आदमी अधार्मिक हो गया है। सिर्फ धर्म के नाम पर जिसे हम धर्म कहते थे, वह पाखंड टूट रहा है।
एक छोटी सी कहानी से समझाने की कोशिश करूं।
मैंने सुना है कि एक रात एक पति घर वापस लौटा, वह थका-मांदा है, वह बिस्तर पर लेट गया है। उसने अपनी पत्नी से कहा कि जल्दी पानी ले आ, मुझे बहुत जोर से नींद आती है। पत्नी पानी लेने गई है। वह जब लेकर लौटी तब तक पति सो ही गया है। तो उस पत्नी ने यह सोचा कि नींद तो लग गई है, अब नींद

तोडूं वह भी ठीक नहीं है, और प्यास तो लगी थी, तो अगर मैं पानी रख कर सो जाऊं, तो नींद खुले, प्यास तब तक और भी बढ़ गई होगी, तो वह पानी का बरतन लिए चुपचाप रात भर उसके बिस्तर के करीब खड़ी रही। पता नहीं कब नींद टूट जाए और पता नहीं कब पानी का खयाल आ जाए और मैं सो जाऊं। कोई सुबह भोर होते-होते पति की नींद खुली, तो वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि तू यह बर्तन लिए यहां क्यों खड़ी है? उसने कहा कि मैंने सोचा कि नींद तोडूं वह भी ठीक नहीं, और आप प्यासे हैं और मैं सो जाऊं और हो सकता है कि मुझे नींद न तोड़े मेरी, इस कारण आप प्यासे ही पड़े रहें, इसलिए मैं रात यहीं खड़ी रही। यह आस-पास खबर पहुंच गई। गांव के सम्राट तक खबर पहुंच गई। गांव का सम्राट उस स्त्री के दर्शन करने आया। सच में ऐसी स्त्री दर्शन के योग्य है। वैसे ऐसी स्त्री मिलना थोड़ा मुश्किल है।
सम्राट जब उसके दर्शन करने आया और बहुत से हीरे-जवाहरात भेंट करने आया। उसने कहा कि ऐसी स्त्री भी इस राज्य में है। मैं धन्यभागी हुआ। पड़ोस की स्त्रियों को आग लग गई। स्त्रियों को काम ही नहीं है सिवाय इसके कि एक-दूसरी स्त्री के प्रति उनको आग लगती रहे। सब तरफ बात फैल गई। स्त्रियों ने कहाः इसमें बात ही क्या खास है? कल हम ही करके दिखा देंगे। इसमें ऐसी बात ही कौन सी खास है?
पड़ोस में एक स्त्री जिसने कहा कि यह तो हद हो गई, इतनी सी बात के लिए इतने हीरे-जवाहरात? इतना शोरगुल? इतनी फूलमालाएं? गांव भर में यह चर्चा और यह देवी बना देना, इसमें रखा क्या है, यह तो हम भी कर सकते हैं। उसने अपने पति से कहा कि ध्यान रखो, आज जब लौट कर आओ तो थके-मांदे लौटना। आते से ही बिस्तर पर लेट जाना और कहना कि प्यास लगी है। मैं पानी लेकर आऊं, तब ध्यान रहे, सो जाना, जागे मत रहना और मैं रात भर खड़ी रहूंगी। इसमें बात ही क्या है? सुबह आंख खुले तो पूछना कि अरे, तू रात भर खड़ी रही? तब मैं वही उत्तर दूंगी जो कि दिया गया है। और तब गांव भर में खबर फैला देना। सम्राट कल हमारे द्वार पर भी आएं।
हुआ, रिचुअल पूरा हो गया। क्रियाकांड पूरा कर दिया गया। पति थक कर लौटा। पति कुछ भी कर नहीं सकता। पत्नी ने आज्ञा दी थी, थक कर लौटना पड़ा। आकर लेट गया, उसने कहा, बड़ी प्यास लगी है। और पूरे जो भी व्यवस्थित किया गया था नाटक, वह खेला गया। जब पति सो गया तो पत्नी ने सोचा कि अब कोई देख भी तो नहीं रहा, रात भर खड़े रहने का मतलब क्या है, सुबह-सुबह फिर खड़े हो जाएंगे। स्वाभाविक था, जिस तर्क से वह चल रही थी उसमें यह तर्क बिल्कुल ही संगत था। अभी तो कोई देख भी नहीं रहा। खबर तो सुबह उड़ानी है। और पति को कह दिया, सुबह तक आंख खोलना मत और बीच में सुबह आंख खोल कर पूछना कि अरे तू अब तक खड़ी है।
पत्नी सो गई। अब पति बार-बार सुबह आंख खोल कर देख रहा कि वह भी सो रही
तो वह बेचारा फिर आंख बंद कर लेता, क्योंकि जब वह बर्तन लेकर खड़ी हो जाए तब वह पूछे कि अरे तू खड़ी है। क्योंकि इसके आगे पूरी कथा चले। वे डायलॉग तो सब तय थे। वह कथा भी चल गई। उन्होंने आस-पास खबर भी पहुंचा दी। लेकिन न सम्राट आया, न गांव से कोई खबर आई। उस स्त्री ने कहा कि बड़ी ज्यादती मालूम हो रही है। बड़ा अन्याय मालूम हो रहा है। जो किया गया वही यहां भी किया गया है। वह सम्राट के पास गई। उसने कहा कि अन्याय हो रहा है। एक के साथ यह और हमारे साथ यह व्यवहार।
तो सम्राट ने कहाः पागल, कुछ चीजें हैं जो होती हैं, की नहीं जाती हैं।
हो जाए तो उनमें फूलों की सुगंध होती है, की जाएं तो कागज के फूल रह जाते हैं।
धर्म कुछ ऐसी चीज नहीं है कि की जा सके। होने वाली बात है। घटना है जो घटती है। हम सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हैं। हम तैयारी कर सकते हैं। हम रो सकते हैं, हम प्रार्थना कर सकते हैं कि वह घट जाए। लेकिन हमने एक क्रियाकांड बनाया है, जिसमें हम धर्म कर रहे हैं। हमने धर्म को एक क्रिया बनाई है, जब कि धर्म एक क्रिया नहीं है। धर्म एक अनुभव है जो घट सकता है, जैसे प्रेम एक अनुभव है।

प्रेम घट सकता है, किया नहीं जा सकता। और किया जाए तो झूठा होगा। इसलिए जो लोग प्रेम करने की आदत में पड़ जाते हैं, वे फिर कभी प्रेम कर ही नहीं पाते। क्योंकि वह घटना कभी घटती ही नहीं। घटना तो उन्हीं को घट सकती है जिन्होंने कभी प्रेम करने के लिए सोचा ही नहीं, तो घटना घट सकती है। लेकिन जिन्होंने प्रेम करना सीख लिया, इसलिए जो लोग प्रेम का धन्धा करते हैं, जैसे अभिनेता हैं, वे बेचारे कभी प्रेम नहीं कर पाते। दिन-रात प्रेम का धंधा करते हैं। दिन-रात अभिनय करते हैं। जब वे अपनी प्रेयसी या प्रेमी के पास होते हैं तब भी वे वही बोलते हैं जो उन्होंने पर्दे पर बोला था, वह भीतर से कुछ आ नहीं सकता क्योंकि अभ्यास मजबूत हो जाता है।
धर्म को हमने अभ्यास बनाया था अतीत युगों में। धर्म को अभ्यास नहीं बनाया जा सकता। धर्म प्रेम की ही तरह की घटना है। इसलिए मैं कहता हूंः धर्म प्रेम है। और जो प्रेम के इस राज को समझ लेता है वही केवल धर्म के राज को समझ सकता है। और जीसस का यह वचन बहुत महत्वपूर्ण है, जहां उन्होंने कहा हैः लव इ.ज गॉड। जहां उन्होंने कहा हैः प्रेम ही प्रभु है। असल में प्रेम ही प्रभु है। इसका मतलब है कि प्रेम के घटने का जो मार्ग है, धर्म के घटने का भी वही मार्ग है।
मैंने सुना है कि रामानुज एक गांव में ठहरे हैं और एक आदमी आया और उस आदमी ने रामानुज के पैर पकड़ लिए और उनसे कहा कि मुझे भगवान से मिलना है, मुझे कोई रास्ता बता दो। रामानुज ने कहा कि तूने कभी किसी को प्रेम किया? उस आदमी ने कहा कि मैं इस झंझट में कभी नहीं पड़ा। आप मुझे भगवान से मिला दो। रामानुज ने कहाः कभी तो किसी को किया ही होगा? उसने कहाः आप भी कहां की सांसारिक बातें कर रहे हैं। मुझे भगवान से मिलना है। रामानुज ने कहा कि फिर मैं एक दफा तुझसे पूछता हूं कभी किसी को भी तूने प्रेम किया होगा? उस आदमी ने कहाः आप कैसी बातें कर रहे हैं। इस झंझट में मैं कभी पड़ा ही नहीं। मुझे भगवान से मिलना है। रास्ता क्या है?
रामानुज उदास हो गए। उनकी आंखें बंद हो गईं। उस आदमी ने कहाः बोलें,
आप उदास क्यों हैं? रामानुज ने कहा कि अगर तूने किसी को प्रेम किया होता तो मैं तुझे समझा सकता था कि धर्म क्या है। जब तेरे जीवन में प्रेम ही नहीं घटा, तो तेरे जीवन में कोई तुलना ही नहीं, कोई कंपेरिजन ही नहीं, जिससे मैं तुझे समझा सकूं कि धर्म की घटना क्या है। अगर तूने कभी तेरे हृदय का फूल किसी के प्रेम में खिला होता, तो मैं तुझे समझा पाता कि धर्म का फूल कैसे खिलता है। लेकिन वह ही नहीं घटा, तो धर्म का फूल तेरी समझ के बाहर है। तू जा और प्रेम कर। उस आदमी ने कहाः आप कहां की बातें मुझे समझा रहे हैं, मुझे भगवान से मिलना है, मुझे प्रेम वगैरह नहीं करना है।
वह आदमी बिल्कुल ठीक कह रहा है। वह आदमी बिल्कुल परंपरागत रूप से ठीक
कह रहा है। रामानुज गर्व की बातें कह रहे हैं। वह आदमी ठीक कह रहा है। शास्त्र उससे मेल खाएंगे। रामानुज से मेल नहीं खा पाएंगे। लेकिन रामानुज ही ठीक कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि मैं तुझे समझाऊं क्या? तेरे पास कोई अनुभव नहीं जो घटा हो। तूने जिंदगी में सब कुछ किया है, घटने वाला कोई अनुभव नहीं है। सिर्फ एक अनुभव है, प्रेम का, जो घटता है और दूसरा अनुभव है धर्म का, जो घटता है। बाकी हम सब करते हैं। रोटी हम कमाते हैं, नौकरी हम करते हैं, दुकान हम चलाते हैं। जिंदगी में बाकी सब हम करते हैं। घटता नहीं है। और अगर हमें न करना पड़े, तो अभी हम छोड़ देंगे। अगर हमें रोटी बिना कमाए मिल जाए, तो कोई कमाने नहीं जाएगा। और अगर हमारा मकान बिना कमाए, बनाए बन जाए, तो कोई बनाने नहीं जाएगा। मजबूरी है वह बिना किए नहीं होता। इसलिए हम करते हैं।
जिंदगी में प्रेम को छोड़ कर सब कुछ कर्म क्रिया है। प्रेम एक घटना है
जो क्रिया नहीं है। और दूसरी एक घटना है धर्म, जो क्रिया नहीं है। प्रेम दो व्यक्तियों के बीच घटता है। और धर्म एक और समस्त के बीच घटता है। प्रेम दो व्यक्तियों के बीच की घटना है। ठीक वैसी ही घटना जब एक और समस्त के बीच घट जाती है, एक और परमात्मा के बीच। परमात्मा यानी समस्त, वह जो सब है, दि टोटेलिटी। जब एक और समस्त के बीच वही घटना घट जाती है, जैसी प्रेम की दो व्यक्तियों के बीच घटती है तब धर्म घटता है। धर्म यानी अनंत हो गया प्रेम।

धर्म यानी विराट हो गया प्रेम। धर्म यानी सरिता जैसे सागर हो गई। ओर-छोर न रहे, किनारे न रहे, सब खो गया अनंत में। लेकिन पुरानी सदियों ने धर्म को बनाया क्रिया, और उसने निमित्त व्यवस्था कर दी, और ऐसी एब्सर्ड व्यवस्था की, इतनी अर्थहीन व्यवस्था की कि आज दुनिया के बढ़े हुए विवेक और बुद्धि के सामने वह अर्थहीनता नहीं टिक पाती। नई पीढ़ियां और नये बच्चे अब पुराने ढंग से धार्मिक नहीं हो सकते। इस सत्य को ठीक से समझ लिया जाना चाहिए कि यह असंभव है। यह अब संभव नहीं होगा।
अब तो धर्म को ही नये अविर्भावों में प्रकट होना होगा। उसे अब क्रिया
की तरह नहीं, रिचुअल, क्रियाकांड की तरह नहीं, उसे प्रेम की तरह एक घटना की भांति, हृदय के एक खिले हुए फूल की भांति प्रकट होना होगा। निश्चित ही कुछ और रास्ते से धर्म को सोचना जरूरी है। नहीं तो नई पीढ़ियां अब भविष्य में धार्मिक न हो सकेंगी। और जितनी पुरानी पीढ़ी जोर देगी कि हमारा जो धर्म था वह बचाया जाए, उतना ही जल्दी उसके धर्म को तोड़ने की व्यवस्था हो जाएगी। जितना जोर दिया जाएगा कि बचाया जाए, क्योंकि जितना वे जोर देंगे उतनी ही एब्सर्डिटी, असंगति दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी।
अभी मैं एक घटना पढ़ा, तो मैं बहुत हैरान हुआ और चिंतित भी हुआ। पुरी के शंकराचार्य दिल्ली में ठहरे हुए थे। एक आदमी उनसे मिलने आया और उस आदमी ने उनसे कहा कि हमारा एक छोटा सा समाज है। वहां हम कभी-कभी ब्रह्म की चर्चा करते हैं। आप चलें और ब्रह्मज्ञान पर हमें कुछ समझाएं। उन्होंने नीचे से ऊपर तक उसे देखा और कहा कि इन कपड़ों में और ब्रह्मज्ञान? वह बेचारा कोट-पेंट पहने हुए है, टाई लगाए हुए है। शंकराचार्य ने कहाः इन कपड़ों में और ब्रह्मज्ञान होगा? तो हमारे ऋषि-मुनि पागल थे, उन्होंने क्यों नहीं टाई और कोट-पेंट, पतलून पहन लिया? वह आदमी घबड़ा गया होगा। दस-पांच नासमझ जो वहां बैठे होंगे, जो कि हर जगह महात्माओं को घेरे बैठे रहते हैं। और वे जो बैठे होंगे और वे सब हंसने लगे होंगे। उनके हंसने से वह आदमी और बेचारा हतप्रभ हो गया, परेशान हो गया। उसने कहाः माफ करिए। कपड़े तो यह, मगर कपड़ों से क्या है? उन्होंने कहाः कपड़ों से क्या है? कपड़ों से सब कुछ है। जनेऊ है भीतर या नहीं? नहीं था। तब तो वह आदमी अपराधी हो गया। कहाः टोपी निकालो। चोटी है भीतर या नहीं? नहीं थी। तब तो उन्होंने हद नासमझी की बातें कहीं। जो शंकराचार्य की हैसियत का व्यक्ति कहे तो सारी पृथ्वी पर हमारा अपमान होता है। उन्होंने उस आदमी से कहाः पेशाब खड़े होकर करते हो कि बैठ कर? अब यह सोचने जैसा है कि पेशाब करने के ढंग से भी जैसे ब्रह्म के मिलने का कोई संबंध है?
ये बातें आने वाले भविष्य में मूर्खतापूर्ण हो जाएंगी। हो गई हैं। लेकिन कभी ये बड़ी अर्थपूर्ण थीं। अर्थपूर्ण इसलिए नहीं थीं कि अर्थपूर्ण हैं, अर्थपूर्ण इसलिए थीं कि मनुष्य को सोचने से ही रोका गया है। मनुष्य को सिखाया गया था--विश्वास, आस्था, श्रद्धा। सिखाया गया था जो कहा जाए उसे चुपचाप मान लेना। उस पर शक ही मत करना। और बचपन से जब यही बात समझाई जाती थी कि मान लेना, मान लेना, सोचना मत, सोचना मत। तो मनुष्य की सोचने की जो क्षमता है वह क्षीण हो गई थी। असल में हमारी वे ही क्षमताएं विकसित होती हैं जिनका हम निरंतर उपयोग करते हैं।
अगर एक बच्चे को बचपन से ही चलने न दिया जाए, तो वह बच्चा कभी भी चल नहीं पाएगा। इसलिए नहीं कि उसके पास पैर न थे। इसलिए भी नहीं कि उसे कोई भगवान ने कमजोर पैर दिए थे। बल्कि पैर भी तभी काम करते हैं जब उनका उपयोग किया जाए। आप भी अगर दो साल पैर बांध कर बैठ जाएं, तो जिंदगी भर के चलने वाले पैर भी दो साल में कुम्लाह कर सिकुड़ जाएंगे और चलना बंद कर देंगे। उनका उपयोग होना चाहिए।
पुरानी पूरी व्यवस्था, विश्वास, मान्यता, बिलीव पर खड़ी थी कि मान लो
और बच्चों को बचपन से समझाया जाता था--सोचना मत, विचारना मत। इसलिए कोई सोच नहीं रहा था। इसलिए इस तरह की नासमझी की बातें अब तक समझदारी की मालूम पड़ी थीं। अब नहीं मालूम पड़ सकती हैं। क्योंकि दुनिया में एक नई घटना घट गई है। और वह नई घटना विज्ञान है। और विज्ञान ने सारे चिंतन के आधार बदल दिए। विज्ञान कहता हैः संदेह करना। डाउट जो है आधार है। विज्ञान कहता है जो

संदेह नहीं करता वह आदमी आदमी ही नहीं। और धर्म अब तक का, तथाकथित धर्म कहता था, संदेह किया कि भटके। और विज्ञान कहता हैः संदेह न किया तो सत्य तक कभी पहुचेंगे नहीं। अब नई दुनिया विज्ञान के निकट आने के कारण रोज-रोज संदेह करेगी। और वह यह पूछेगी कि यह चोटी का होना ब्रह्मज्ञान के लिए क्यों जरूरी है? इसका क्या वैज्ञानिक संबंध है? और इस नई पीढ़ियों को समझाने की चेष्टा और नामसझी की होगी।
अभी एक सज्जन ने किताब लिखी है। उसमें उन्होंने समझाने की कोशिश की
कि हां, चोटी वैज्ञानिक है। और कारण उन्होंने बड़ा मजेदार दिया है, कि बच्चे हंसेंगे और आने वाली पीढ़ियां हंसेंगी कि क्या बातें करते थे लोग? उसमें उन्होंने समझाया है कि चोटी बहुत वैज्ञानिक है, और कारण यह दिया है कि हमने बहुत पहले जो रहस्य खोज लिए थे वे विज्ञान ने अब खोजे हैं। और वह रहस्य यह था कि उसमें उन्होंने लिखा है कि बड़े मकानों पर देखा हैः लोहे की डंडी लगा देते हैं ऊपर, ताकि बिजली गिरे तो डंडी से नीचे चली जाए, मकान खराब न हो। वह चोटी जो थी हमारी बिजली को बचाने के लिए निकाली थी। अब ये बातें और बातों को असंगत कर देंगी। ये बचाने की नासमझ चेष्टाएं। और जल्दी उस मकान को गिरा देंगी जो गिरने के करीब हो गया है। अब बच्चे इस बात को सोच कर हैरान हो जाएंगे कि चोटी जो है बांध कर खड़ी रखने से यह बिजली के लिए शरीर से बाहर निकालने के लिए कंडक्टर का काम करने वाली है। अभी बच्चे ये कितने दिन तक हम ये बातें समझा सकते हैं?
असल में जो समझा रहे हैं वे धर्म के लिए नुकसान पहुंचा रहे हैं, क्योंकि वे, यह इनकी बातों के कारण डर है कि कहीं उनकी बातों के डूबने के साथ-साथ मनुष्य के मन में धर्म की जिज्ञासा न डूब जाए। खतरा यह है कि ये तथाकथित साधु-संन्यासियों की निरंतर चलती हुई बातचीत के साथ कहीं ऐसा न हो कि हम धर्म के प्रति ही विमुख हो जाएं। जिसका भी डर पैदा हो गया। क्योंकि अगर ये सारी बातें बकवास हैं तो ऐसा भी मालूम पड़ सकता है कि धर्म भी कहीं बकवास तो नहीं है।
और मैं आपसे कहना चाहूंगा कि धर्म ही जीवन में सारभूत है। लेकिन क्रियाकांड से जुड़ा हुआ धर्म मर चुका है। उसकी लाश को आगे नहीं खींचा जा सकता। अब एक स्पांटेनियस रिलीजन, एक सहजस्फूर्त हार्दिक धर्म की दुनिया में जरूरत है। जो क्रियाकांड पर निर्भर नहीं है, जो मनुष्य के चेतन व्यवहार पर, मनुष्य के मन के परिवर्तन पर, जो मनुष्य के होने के ढंग पर-- करने के ढंग पर नहीं, होने के ढंग पर निर्भर है। तब जरूरी नहीं है कि वैसा आदमी धार्मिक आदमी हिंदू और मुसलमान हो। क्योंकि हिंदू और मुसलमान रिचुअल के फर्क हैं। एक आदमी इस तरह नमाज पढ़ता है तो मुसलमान है और इस तरह प्रार्थना करता है तो हिंदू।
अब तक क्रियाकांड के कारण ही दुनिया में इतने धर्म बन सके। इस समय कोई तीन सौ धर्म हैं सारी पृथ्वी पर। यह भी हंसने जैसी बात है। विज्ञान तो एक है और धर्म तीन सौ हैं! यह कैसे हो सकता है? पानी हिंदुस्तान में गर्म करो तो सौ डिग्री पर गर्म होता है, और तिब्बत में करो तो सौ डिग्री पर, और इंग्लैंड में करो तो, और पाकिस्तान में करो तो भी सौ डिग्री पर ही होता है। कोई पाकिस्तान में मुसलमान मुल्क हो जाने से कोई डिग्री नहीं बदल जाती। पानी एक ही नियम मानता है सारे जगत में। आग एक नियम मानती है। अणु एक नियम मानते हैं। सारी प्रकृति एक नियम मानती है। प्रकृति के नियम सार्वभौम, युनिवर्सल हैं। तो चेतना के, आत्मा के नियम अलग-अलग कैसे हो सकते हैं? वे भी एक ही नियम मानते हैं। और जब आप डाक्टर के पास जाते हैं तो वह यह नहीं पूछता कि टी. बी. आपको है तो आप हिंदू हैं या मुसलमान हैं। क्योंकि मुसलमान की टी. बी. का असल में इलाज और ढंग का होना चाहिए। कुछ पाकिस्तानी ढंग का इलाज चाहिए। हिंदू के लिए कुछ हिंदुस्तानी ढंग का इलाज चाहिए। लेकिन टी. बी. के लिए टी. बी. के कीटाणु फिकर नहीं करते हैं के हम मुसलमान के भीतर रह रहे हैं या हिंदू के भीतर रह रहे हैं। वे टी. बी. के कीटाणु एक ही नियम का पालन करते हैं कि वे टी. बी. के किटाणु हैं। उनको कुछ पता नहीं है। अभी खून को निकाल कर कोई नहीं बता सकता कि यह खून हिंदू का है कि मुसलमान का है। हड्डियों के ऊपर से कुछ पता नहीं चलता कि हड्डी जैन की है कि बौद्ध की है

कि ब्राह्मण की है कि शूद्र की है। आदमी-आदमी के बीच जो भेद था वह भी धर्म के कारण न था। धर्म तो भेद पैदा कर ही नहीं सकता। धर्म ही एकमात्र अभेद है। वही एकमात्र अद्वैत है।
अगर कोई आदमी धार्मिक हो जाए तो इसका मतलब यह हुआ कि उसकी सब सीमाएं टूट गईं। अब वह सबके साथ एक हो गया। अब उसके लिए कोई फासला न रहा। कोई दुश्मन न रहा। कोई पराया न रहा। कहीं कोई सीमा न रही। लेकिन अब तक जो धार्मिक आदमी था उसकी बड़ी सीमाएं थीं। और वे सीमाएं धर्म की न थीं, वे भी क्रियाकांड की थीं। एक आदमी एक ढंग से प्रार्थना करता है, दूसरा आदमी दूसरे ढंग से। एक आदमी भगवान का एक नाम लेता है, दूसरा दूसरा नाम लेता। एक एक किताब को मानता, दूसरा दूसरी किताब को मानता। उसके कारण दोनों के बीच एक दीवाल खड़ी हो जाती। और उस दीवाल ने बहुत नुकसान पहुंचाया।
भविष्य में जो धर्म होगा वह हिंदू-मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकता। वह सिर्फ धर्म होगा। और यह भी मैं आपसे कहना चाहूंगा कि जिस दिन पृथ्वी पर सिर्फ धर्म होगा उसी दिन हम अधर्म से जीत सकते हैं, उससे पहले नहीं जीत सकते। जिस दिन पृथ्वी पर सिर्फ धर्म होगा उस दिन लड़ाई अधर्म से होगी। जब तक पृथ्वी पर बहुत धर्म हैं तब तक धर्म और धर्म लड़ते हैं, अधर्म से लड़ाई हो ही नहीं पाती, हो भी नहीं सकती। हिंदू मुसलमान से लड़े या अधर्म से लड़े? जैन हिंदू से लड़े या अधर्म से लड़े? दुनिया के सब धार्मिक आदमी दूसरे धार्मिक आदमियों से लड़ रहे हैं और अधर्म से किसी की कोई लड़ाई नहीं हो पाती। हो ही नहीं सकती। धार्मिक आपस में लड़ कर मिट जाते हैं और अधर्म फलता-फूलता चला जाता है।
अधर्म बढ़ता है यह भी बड़े मजे की बात है कि अधर्म के खेमे नहीं हैं। अधार्मिक आदमी सारी दुनिया में एक हैं। उसका कोई अलग-अलग, कई तरह के अधर्म नहीं हैं। अधार्मिक आदमी एक है। नास्तिक बहुत तरह के नहीं हैं दुनिया में, नास्तिकता एक है। और आस्तिकता बहुत तरह की हैं। धर्म बहुत तरह के हैं। यह हैरानी की बात है। इससे उलटा होता तो समझ में आ सकता था कि बहुत तरह के नास्तिक होते और आपस में लड़ते। लेकिन बहुत तरह के आस्तिक आपस में लड़ते हैं। यह ठीक होता कि दुनिया के अधार्मिक आपस में लड़ते, लेकिन अधार्मिक लड़ते ही नहीं, धार्मिक लड़ते हैं। आने वाला भविष्य एक ऐसे धर्म की तलाश कर रहा है रोज जो धार्मिकों को न लड़ाता हो, बल्कि धर्म को अधर्म के सीधे एनकाउंटर में सीधे उसके सामने खड़ा, आमने-सामने खड़ा कर देता हो, तो ही दुनिया से अधर्म मिट सकता है।
अब तक धर्म सीधा लड़ नहीं पाया अधर्म से। चर्च मंदिर से लड़ता है, तो अंधेरे के मकान से कौन लड़ेगा? अंधेरे का मकान रोज बड़ा होता चला जाता है। अधर्म है, था और डर है कि कहीं आगे भी न बच जाए। अगर हम धर्म की कोई नई व्याख्या नहीं खोज लेते और धर्म के कोई नये आयाम, नये डायमेंशंस नहीं खोज लेते, धर्म का कोई वैज्ञानिक अर्थ नहीं खोज लेते, धर्म को क्रियाकांड से मुक्त करके धर्म की कोई हार्दिक मनोदशा नहीं खोज लेते, तो दुनिया में अधर्म बढ़ता चला जाएगा। और धर्म की फिर भी कोई उम्मीद नहीं मालूम पड़ती। लेकिन खोजा जा सकता है। और अब खोजना पड़ेगा क्योंकि पाखंड के कारण अब तक खोज संभव नहीं हो पाती थी। वह पाखंड गिर रहा है। और मैं मानता हूं कि आदमी धर्म के बिना नहीं जी सकता। लेकिन अगर धर्म का पाखंड भी उसके हाथ में हो तो वह धर्म के सब्स्टीट्यूट से भी राजी हो जाता है। वह उसी के साथ जी लेता है।
हमें पता भी नहीं चलता है।
एक कहानी मुझे याद आती है उससे अपनी बात पूरी करूं।
मैंने सुना है, एक रात एक जंगल से दो संन्यासी जा रहे हैं भागते हुए अपने-अपने जहां उन्हें ठहरना है, जहां रुकना है। वे भागे चले जा रहे हैं। बूढ़ा संन्यासी तेजी से भाग रहा है। जवान संन्यासी बार-बार कहता है कि इतनी जल्दी क्या है? वह कहता है कि जल्दी है। रास्ता अंधेरा है। अमावस की रात है। खतरा है। वह जवान संन्यासी बहुत बार सोचता है कि संन्यासी को खतरा कैसा? असल में जिसने सारे खतरे स्वीकार कर लिए हैं वही तो संन्यासी है। तो संन्यासी को खतरे का क्या मतलब? जिसको खतरा है उसी को तो हम गृहस्थ कहते हैं। असल में जो खतरे से डरा हुआ है वही गृहस्थ है। और गृहस्थ का मतलब ही

यह है कि खतरे से बचने को उसने एक घर बनाया है। खतरे से बचने के लिए ही तिजोरी रखी है। खतरे से बचने के लिए इंतजाम किया है। लेकिन संन्यासी वह जिसने खतरे को स्वीकार कर लिया है। अब उसके पास न घर है, न दीवाल है, न तिजोरी है। यह आदमी डर क्यों रहा है? फिर इस बूढ़े संन्यासी ने आज तक कभी कहा भी नहीं पहले, फिर आज ही क्या खतरा है?
फिर वे एक कुएं पर रुके हैं। बूढ़े ने अपने झोले को जवान को दिया, कहा
कि मैं पानी खींच लूं, सम्हाल कर रखना। तब उसे खयाल आया कि खतरा जरूर झोले के भीतर होना चाहिए। उसने हाथ भीतर डाला, तो देखा, एक सोने की ईंट भीतर रखी हुई है। खतरा पकड़ में आ गया। उसने वह ईंट निकाल कर बाहर फेंक दी और एक उतने ही वजन का पत्थर उठा कर झोले के भीतर रख दिया। संन्यासी बूढ़े ने जल्दी से हाथ-मुंह धोया, क्योंकि जिसकी झोली में सोने की ईंट हो वह हाथ-मुंह भी ठीक से नहीं धो पाता। चौबीस घंटे जल्दी है। क्योंकि वह फिकर जो ईंट की लगी हुई है। वह सब काम करता है लेकिन फिकर ईंट की लगी रहती है। वह भागा, जल्दी से झोला अपने हाथ में लिया, टटोल कर देखी, ईंट है, कंधे पर टांगा, वजन है। दौड़ शुरू हो गई। फिर रात अंधेरी होने लगी चारों ओर, रास्ता भटक गए। उसने दो मील चलने के बाद कहा, क्या मामला है? कोई रोशनी नहीं दिखाई पड़ती, गांव का कुछ पता नहीं, रात अंधेरी है, और बड़ा खतरा है। उस युवक ने कहाः बिल्कुल बेफिकर हो जाइए, खतरे को मैं दो मील पीछे फेंक आया हूं।
सुना, क्या कहते हो? उसने घबड़ा कर अंदर झोली में हाथ डाला, वहां तो पत्थर था, सोने की ईंट नहीं थी। लेकिन दो मील तक पत्थर की ईंट ने सोने की ईंट का पूरा काम किया। उसने कहाः बड़ी अजीब बात है! मैं दो घंटे तक पत्थर को कोई छीन न ले, इससे डरा हुआ था। तो फिर अब गांव जाने की क्या जरूरत है, यहीं सो जाएं। उस बूढ़े ने कहाः फिर यहीं सो जाएं, अब रात यहीं गुजार लें। फिर सुबह चले चलेंगे। अब कुछ खतरा नहीं है।
पत्थर की ईंट भी सोने की ईंट के भ्रम में दो घंटे तक खतरा दे सकती है।
एक घड़ी आई है मनुष्य-जाति के जीवन में, एक मैच्योरिटी की, एक प्रौढ़ता की। आदमी प्रौढ़ हुआ है कि हम जिसे अब तक धर्म की ईंट समझते थे वह पत्थर की ईंट साबित हुई। अब कुछ लोग यहां कहते हैं, आंख बंद रखो और अभी भी सोने की ईंट माने चले जाओ। लेकिन आंख अगर जबरदस्ती बंद रखो, तो भी बीच-बीच में खोल कर देखना पड़ता है। और वह ईंट सोने की नहीं है, वह पत्थर की है।
और नये बच्चे तो कहते हैं कि आंख बंद क्यों रखें? जब नहीं है सोने की
तो नहीं है। पत्थर की है तो ठीक है। अब छोड़ो इसको। अब इसकी फिकर छोड़ो। लेकिन कुछ लोग हैं जो कहे चले जा रहे हैं कि नहीं, यह सोने की है, इसको बचाना जरूरी है, क्योंकि हमारे बापदादाओं ने इसे बचाया है। उन्होंने बचाया होगा। उन्होंने गलती की। और जितनी जल्दी उस गलती को हम समझ लें उतना बेहतर है। और अच्छा हो कि इस ईंट की तो हम फिकर छोड़ दें। लेकिन अब झोला खाली हो गया है। और खाली झोला बहुत अखरेगा। खाली आदमी बहुत अखरेगा। पश्चिम में वह खालीपन, एंप्टीनेस बहुत जोर से मालूम पड़ रही है। इस समय पश्चिम के सारे साहित्य में, पश्चिम के सारे विचारकों में एक शब्द जो बहुत कीमती है, वह है एंप्टीनेस, खालीपन। इस वक्त अगर दर्शन की कोई पश्चिम की किताब पढ़ें, तो उसमें परमात्मा की चर्चा नहीं होगी, आत्मा की चर्चा नहीं, एंप्टीनेस की चर्चा होगी, खालीपन। आदमी खाली-खाली मालूम पड़ रहा है। एक कड़ी खो गई है जिसे हमने समझा था कि सोने की थी वह पत्थर की हो गई है। एक वर्ग है जो कहता है अब भी उसे सोने की माने चले जाओ। यह कैसे हो सकता है? दूसरा वर्ग है जो इसके खिलाफ कह रहा है कि यह भ्रम ही छोड़ो, ईंट-वींट सोने की हो ही नहीं सकती, सब ईंटें पत्थर की हैं।
इन दो के बीच एक लड़ाई चल रही है। एक है जो कह रहा है कि इसी को सोने की मानो, नहीं तो खाली हो जाओगे। दूसरा यह कह रहा है, खालीपन आदमी की नियति है, भाग्य है। कोई ईंट है ही नहीं सोने की, सब पत्थर की हैं, फेंको इसको और खाली रह जाओ। इन दो के बीच सारी दुनिया में कश्मकश है। मैं बिल्कुल तीसरे तरह का आदमी हूं जो यह कहना चाहता हूंः वह ईंट पत्थर की थी, उसे फेंको, लेकिन सोने की ईंट भी हो सकती है। खाली रहने की कोई जरूरत नहीं। सोने की ईंट खोजी जा सकती है। प्रेम को मैं धर्म के लिए सोने की ईंट कहता हूं।

आने वाले तीन दिनों में सांझ मैं प्रेम की चर्चा करूंगा की वह सोने की ईंट कैसे खोजी जाए जिसकी वजह से हम खाली पड़ गए हैं, एकदम दीन और दरिद्र हो गए हैं। और सुबह ध्यान की चर्चा करूंगा, क्योंकि ध्यान के द्वार से ही उस खजाने तक पहुंचा जा सकता है जो प्रेम है। क्योंकि प्रेम कोई कृत्य नहीं है। इसलिए प्रेम को हम कर नहीं सकते हैं, लेकिन प्रेम घट सकता है।
जैसे कि मेरे घर के बाहर सूरज निकला हुआ है और मैं द्वार बंद करके भीतर बैठा हुआ हूं। मैं सूरज की रोशनी को घर के भीतर नहीं ला सकता। पोटली बांध लूं, पेटी में बंद करूं, तो पेटी आ जाएगी, पोटली आ जाएगी, रोशनी बाहर रह जाएगी। और रोशनी को घर के भीतर नहीं लाया जा सकता। लेकिन मैं दरवाजा खोल सकता हूं। और दरवाजा खोल कर बैठ जाऊं तो रोशनी आ जाएगी।
ध्यान द्वार का खोलना है--जिससे प्रेम की घटना भीतर आकर घट सकती है।
तो जो लोग सिर्फ विचार करने को उत्सुक हैं, वे सांझ के लिए निमंत्रित हैं। लेकिन जो लोग प्रयोग करने के लिए उत्सुक हैं कि कैसे वह प्रेम की अदभुत घटना घट जाए जहां से हम परमात्मा की मंजिल में प्रविष्ट हो जाते हैं, वे सुबह निमंत्रित हैं।
सुबह के लिए जो लोग आना चाहते हैं, उनको दो-तीन सूचनाएं मैं दे दूं, फिर अपनी बात पूरी करूं।
पहली बात तो यह कि स्नान करके ही आएं। दूसरी बात यह कि ताजे कपड़े पहनें और आने के घंटे भर पहले से चुप रहने की कोशिश करें। बात मत करें घंटे भर पहले से।
एक आदमी को अपने घर के सामने साइकिल रोकनी हो, तो आधा फलांग दूर से पैडल बंद कर देता है। आधा फलांग तो साइकिल पुरानी गति से चल जाती है, पैडल चलाने की जरूरत नहीं रहती। और घर के सामने ही अगर आकर एकदम से ब्रेक लगाया जाए, तो खतरे का भी डर है। और हमारे माइंड में ब्रेक नहीं हैं, यह भी दिक्कत है। वहां कोई ब्रेक नहीं हैं कि हम एकदम से ब्रेक लगा दें। हमारे माइंड की, हमारे मन की जो व्यवस्था है वह बहुत धीमे-धीमे चलती है।
अगर आपको क्रोध आ जाए, तो घंटा दो घंटा उसको विर्सजित होने में लगते हैं। तो यहां ध्यान की तैयारी करने के लिए घंटे भर पहले से ही, यहां साढ़े आठ बजे ध्यान शुरू होगा, आप साढ़े सात बजे से चुप हो जाएं, बात न करें। बहुत जरूरी है तो कुछ बोलें, नहीं तो न बोलें। स्नान करें, चुपचाप चले आएं। रास्ते में भी बात न करें। यहां भी आकर आप आठ बजे, सवा आठ बजे जब आ जाएंगे ध्यान के स्थल पर तो चुपचाप आंख बंद करके बैठ जाएं, यहां कोई बात न करें। दरवाजे के भीतर प्रविष्ट होते से बात नहीं। फिर दरवाजे के बाहर की दुनिया बाहर शुरु होगी। दरवाजे के भीतर आप अलग दुनिया में चले गए। चुपचाप आकर बैठ जाएं।
फिर ध्यान कैसे करना है, कैसे ध्यान में जाना है, वह तो मैं सुबह बात करुंगा। एक घंटा हम ध्यान में प्रवेश में जाएंगे। वह एक घंटा आपके जीवन में एक अदभुत घटना बन सकता है। जिसका आपको पता भी न हो कि क्या संभव हो सकता है। बहुत खजाने हैं, जिनकी तरफ हमने आंख उठा कर नहीं देखा। बहुत रोशनियां हैं, जो हमारे पास मौजूद हैं, लेकिन हम पीठ किए खड़े हैं। बहुत फूल हैं, जो खिले हैं और हमें बुला रहे हैं, लेकिन हमारे पास सुगंध लेने की क्षमता नहीं। बहुत वीणाएं हैं, जो निमंत्रण दे रही हैं, लेकिन हमारे पास वे कान नहीं जो उन्हें सुन सकें। ध्यान में उसकी खोज है जो इन वीणाओं को, इन फूलों को, इन रोशनियों की रिसेप्टिविटी, ग्राहकता पैदा कर देती है।
तो जो प्रयोग में उत्सुक हैं वे सुबह आ जाएं। सांझ हम बात करेंगे और सुबह प्रयोग करेंगे।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम दर्शन
दूसरा प्रवचन

आनंद के क्षण

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैंने सुना है, एक गांव था जिसमें सभी लोग अंधे थे। और जब भी उस गांव में भूल से कोई आंख वाला पैदा हो जाता, तो उस गांव के चिकित्सक उसकी आंख का आपरेशन कर देते थे यह सोच कर कि यह बेचारा कुछ गलत पैदा हो गया है।
ठीक ही था उनका तर्क। अंधो की भीड़ कैसे माने कि किसी के पास आंख भी होती हैं? और इसलिए इस पृथ्वी पर जब भी कोई धार्मिक व्यक्ति पैदा हुआ है, तो अंधों की भीड़ ने उसे मार डाला है। सिर्फ इस कारण कि यह हमारे विश्वास के बाहर है कि ऐसा आदमी ठीक हो सकता है? हम उसे मिटा डालना चाहते हैं। मर जाने के बाद हम पूजा करते हैं जरुर। मर जाने के बाद पूजा बहुत आसान है। पूजा भी जिनसे हम छुटकारा चाहते है उनकी ही करते है। पुज्य बना कर हम अपने और उनके बीच एक फासला बना लेते हैं--राम, कृष्ण, बुद्ध, क्राइस्ट हम कहने लगते हैं, वे भगवान हैं और हम आदमी हैं। सोचते हम हैं कि शायद इस भांति हम उन्हें आदर दे रहे हैं। हम सिर्फ एक चालाक तरकीब खोज रहे हैं जिससे हम धार्मिक होने से बच जाएं।
जब हम किसी आदमी को भगवान कह देते हैं तो फिर आदमी होने के कारण धार्मिक होना हमारे बस के बाहर की बात हो जाती है। फिर हम कहते हैं, हम साधारण आदमी हैं, हम कैसे धार्मिक हो सकते हैं? बुद्ध हो सकते हैं, महावीर हो सकते हैं, कृष्ण हो सकते हैं, वे अवतार हैं, वे तीर्थंकर हैं, हम साधारण आदमी हैं, हम कैसे भगवान हो सकते हैं?
मनुष्य ने अपने को धर्म से बचाने की जो तरकीबें ईजाद की हैं उनमें एक बड़ी से बड़ी तरकीब यह है कि धार्मिक लोगों को भगवान बना कर हमने आदमी की सीमा के बाहर कर दिया है। जब कि कोई भी भगवान नहीं है या सभी भगवान हैं। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई उपाय नहीं। अगर राम भगवान हैं तो आप भी भगवान हैं। हां, यह हो सकता है कि एक जागा हुआ भगवान हो, एक सोया हुआ भगवान हो, यह हो सकता है। एक ने पहचान लिया हो अपनी भगवत्ता को और एक ने न पहचाना हो। लेकिन इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। या दूसरा रास्ता यह है कि भगवान कोई भी नहीं है।
अब तक हमने एक तरकीब निकाली है जिसमें कुछ लोग भगवान हैं और बाकी लोग भगवान नहीं हैं। उन दोनों के बीच अलग-अलग खाई हैं जिसे पार नहीं किया जा सकता। इसलिए जो इस पार आदमी के तट पर खड़े हैं वे थक कर मान लेते हैं कि हम आदमी हैं, हमसे कुछ हो नहीं सकता। किंतु पुराने धर्म ने मनुष्य और परमात्मा को जोड़ा कम खाई ज्यादा खड़ी की है।
एक और बात मुझे स्मरण आती है जो मैं कहना चाहूंगा और वह यह कि पुराने धर्मों में किसी भाति संसार को और परमात्मा को भी दुश्मनों की तरह निरुपित कर दिया। कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि महात्मा सदा से ही परमात्मा के खिलाफ हैं। खिलाफ इसलिए कहता हूं कि परमात्मा तो संसार को रोज बनाए चला जाता है और महात्मा संसार की रोज निंदा किए चले जाते हैं। परमात्मा थकता नहीं है बनाने से और महात्मा थकते नहीं हैं मिटाने से। वे इस कोशिश में लगे हैं कि सारे लोग संसार से कैसे मुक्त हो जाएं? वे इस कोशिश में लगे हैं कि आवागमन कैसे बंद हो जाए? वे सारी जिंदगी को आसार, अर्थहीन करने की कोशिश में लगे हैं।
तो मैं कहना चाहता हूं कि अब तक जिसको हम महात्मा कहते रहे हैं वह परमात्मा का कुछ दुश्मन मालूम पड़ता है। परमात्मा तो जीवन को रोज बनाए चला जाता है, वह थकता ही नहीं है, अथक निर्माण करता चला जाता है। और महात्मा कहते हैं, सब असार है, सब व्यर्थ है।
ध्यान रहे, अगर संसार को और परमात्मा को हमने दुश्मन बनाया तो इसके दो परिणाम होंगे। इसका पहला परिणाम तो यह होगा कि जो संसार में है वह परमात्मा की तरफ आंख उठाना बंद कर देगा। और दूसरा परिणाम यह होगा कि जो परमात्मा की तरफ आंख उठाएगा वह संसार से भागना शुरू कर देगा। दोनों

परिणाम महंगे और खतरनाक हैं। क्योंकि बुरा आदमी परमात्मा की तरफ आंख न उठाएगा। और अगर बुरा आदमी परमात्मा की तरफ आंख न उठाएगा तो वह अच्छा कैसे होगा? और भला आदमी संसार छोड़ कर भाग जाएगा। और जब भला आदमी संसार छोड़ कर भाग जाता है तो संसार और बुरा हो जाता है। क्योंकि भला आदमी उसे भला कर सकता था। वह छोड़ कर भाग जाता है।
पिछले पांच हजार वर्षों की दुखद कथा यह है कि बुरा आदमी परमात्मा को नहीं देखता, भला आदमी संसार को नहीं देखता। भला आदमी इस संसार की तरफ पीठ कर लेता है, संन्यासी हो जाता है। और भले आदमियों ने संन्यास लेकर मनुष्य को जितना नुकसान पहुंचाया उतना बुरे लोगों ने नहीं पहुंचाया। क्योंकि जब अच्छा आदमी जगह खाली कर देता है तो बुरे आदमी जगह भर देंगे, बुरे आदमी जगह खाली नहीं छोड़ेंगे। और जब अच्छा आदमी भागेगा तो बुरा आदमी कब्जा कर लेगा। सारी पृथ्वी पर बुरे आदमी का कब्जा है, क्योंकि अच्छा आदमी भगोड़ा सिद्ध हुआ है, वह भाग रहा है। वह कहता है, हमें कुछ भी नहीं करना, सब छोड़ कर भाग जाना है। अच्छा आदमी एक तरह से अपने हाथ से अपने को क्लीव, अपने को शक्तिहीन कर रहा है, इंपोटेंट कर रहा है। और बुरा आदमी जोर से ताकत में लगा है।
जमीन पर इतना अधर्म है उसका एक कारण यह भी है कि भला आदमी संसार को प्रेम नहीं करता। जिसे हम प्रेम नहीं करते उसे हम बदल भी नहीं सकते। जिससे हम घृणा करते हैं उसे हम बदलेंगे क्यों? बल्कि जिसे हम घृणा करते हैं वह जितना भी बुरा होता है उतना हमें रस आता है कि ठीक ही हमने घृणा की, इस योग्य ही था, संसार छोड़ने ही योग्य था।
यह संसार इतना बुरा नहीं है जितना दिखाई पड़ रहा है। और जितना दिखाई पड़ रहा है उसमें अधिकतर हमारी मेहनत से बुरा हुआ है। हमारी मेहनत से यह सुंदर भी हो सकता था। मैं मानता हूं कि भविष्य में कोई भी धर्म जो मनुष्य को संसार विमुख करता होगा वह धर्म जिंदा नहीं रह सकता, उसके मरने की घड़ी आ गई है।
ऐसा धर्म चाहिए जो संसार को रूपांतरित करता हो, संसार से भगाता न हो। ऐसा धर्म चाहिए जो गृहस्थ को संन्यासी न बनाता हो वह जो गृहस्थ होने में ही संन्यास को ले आता हो। ऐसा धर्म चाहिए जो जिंदगी के बीच हमें मिल जाए, जिंदगी को छोड़ कर जिसके लिए हमें जाना और भागना न पड़े। कितने लोग भागेंगे? और थोड़ा हम सोचें, अगर संन्यासी की बात सच है और सारे लोग संन्यासी हो जाएं, तो एक भी आदमी एक क्षण जिंदा नहीं रह सकेगा। संन्यासी भी उन पर जिंदा है जो संन्यासी नही हैं। मंदिर में बैठ कर जो चौबीस घंटे पूजा कर रहा है वह भी उनके श्रम के कारण पूजा कर रहा है जो चौबीस घंटे दुकानों पर श्रम कर रहे हैं। यह आर्श्चयजनक है कि संन्यासी का शोषण हमें दिखाई नहीं पड़ा। लेकिन संन्यासी शोषक है, और बहुत अदभुत ढंग से।
अभी एक संन्यासी मुझे मिलने आया था। मैं कुछ दूसरी सभा में जाता था, मैंने उनसे कहा, उन्होंने पूछा था कि मैं ध्यान कैसे करूं? तब मैंने उनसे कहा आश्चर्य कि आप संन्यासी कैसे हो गए? क्योंकि ध्यान के बिना कोई संन्यास में प्रवेश कैसे कर सकता है? संन्यासी होकर पूछ रहे हैं कि ध्यान कैसे करूं! इधर कल सुबह ध्यान है, उसमें आ जाइए, उनसे मैंने कहा। उन्होंने कहाः फिर मुझे जरा बाहर एक सज्जन बैठे हैं उनसे पूछना पड़ेगा। मैंने कहाः उनसे क्यों पूछना पड़ेगा? उन्होंने कहा कि मैं पैसे अपने पास नहीं रखता हूं, पैसे वे सज्जन रखते हैं। टैक्सी में मेरे साथ होते हैं तो वे पैसे चुकाते हैं। अगर वे आने को राजी होंगे तभी मैं आ सकता हूं, क्योंकि पैसे मैं नहीं रखता हूं। अब मैंने कहा कि बड़े चालाक और कनिंग आदमी मालूम पड़ते हो, पैसों का काम तो लेना ही है, टैक्सी में पैसे तो देने ही हैं। अपनी जेब में रहें कि दूसरे की जेब में, इससे क्या फर्क पड़ता है? फर्क थोड़े ही पड़ता है। पैसा दूसरे की जेब में, पापी दूसरा हो जाता है, टैक्सी में हम बैठते हैं। नरक जाएगा वह जिसने पैसे चुकाए, स्वर्ग जाऊंगा मैं जिसके लिए पैसे चुकाए गए। अगर ऐसा हो रहा है तो फिर जगत में बड़ा अन्याय होता होगा। वैसे दूसरे की जेब में हाथ डाल कर जीना बहुत आसान है।

एक सुबह एक बगीचे में बर्नार्ड शॉ घूम रहा था और साथ में चैस्टटन नाम
का लेखक था। और चैस्टटन बहुत मोटा था और बर्नार्ड शॉ तो बहुत दुबला-पतला था। चैस्टटन अपने दोनों खीसों में हाथ डाले हुए था, तो बर्नार्ड शॉ ने उससे पूछा कि चैस्टटन, कभी-कभी मैं सोचता हूं कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि एक आदमी जिंदगी भर अपने खीसे में हाथ डाले हुए बिता दे? चैस्टटन ने कहा कि हो सकता है, लेकिन हाथ अपने हो खीसे दूसरे के चाहिए।
अपने ही खीसे में हाथ डाल कर जिंदगी बिताना बहुत मुश्किल हो जाएगा। संन्यासी यह काम कर रहा है हजारों साल से, हाथ अपने हैं खींसे दूसरे के हैं, वह जिंदगी बिता रहा है--वह पूजा कर रहा है, वह प्रार्थना कर रहा है, वह ध्यान कर रहा है--खीसे दूसरे के हैं।
यह उधार संन्यास है। अब तक का सारा धर्म उधारी पर खड़ा हो तो वास्तविक नहीं हो सकता है। लेकिन यह हो क्यों गया? इसके पीछे बात क्या है? यह कैसे संभव हुआ कि हमने धर्म को संसार का दुश्मन, लाइफ निगेटिव बना दिया? जिंदगी का निषेध हमने धर्म को क्यों बना लिया? धर्म ने जिंदगी को भरा क्यों नहीं, खाली क्यों किया? धर्म ने जिंदगी में और फूल क्यों न जोड़े, लगे फूलों को क्यों गिराया? और धर्म ने जिंदगी की निंदा क्यों की प्रशंसा क्यों न की? क्योंकि अगर मैं एक चित्रकार का चित्र देखूं और उस चित्र की निंदा करूं, तो ध्यान रहे, चित्र की निंदा नहीं होती, निंदा हमेशा चित्रकार की हो जाती है। चित्र की कोई निंदा होती है? जिन्होंने संसार की निंदा की है उन्होंने गहरे में परमात्मा की निंदा कर दी है। शायद उन्हें इस रहस्य का पता न हो। लेकिन यह बात है संसार की निंदा अंत तक परमात्मा की निंदा है। क्योंकि, क्योंकि संसार की सारी गहराई में तो वही तो मौजूद है, उसके सृजन में वही मौजूद है। उसके पानी में, सूरज में, रोशनी में वही मौजूद है। अगर यह चित्र है तो वह चित्रकार है; अगर यह नृत्य है तो वह नृतक है। अगर नृत्य की निंदा की जाए तो नृत्य की कोई निंदा नहीं होती निंदा सब नर्तक की हो जाती है। लेकिन बड़ी अदभुत बड़ी कंट्राडिक्ट्री बात चलती रही। संसार की निंदा चलती रही, भगवान की प्रशंसा चलती रही। और इन दोनों के बीच हमें कभी विरोध नहीं दिखाई पड़ा।
यह विरोध देखना पड़ेगा। क्योंकि इस विरोध में दोहरे नुकसान हुए हैं।
इस विरोध में बड़ा नुकसान तो यह हो गया कि आदमी को जीना तो पड़ेगा संसार में ही, कोई उपाय नहीं है, संन्यासी भी संसार में ही जीता है, कोई और कहीं जी नहीं सकता। जीना भी संसार में ही है, मरना भी संसार में ही है। नाम हम बदल लें, कपड़ों के रंग बदल लें, वह सब खेल की बातें हैं, उससे कुछ हो नहीं सकता। लेकिन जीना संसार में है, अगर संसार निंदित हो जाएगा तो जीवन निंदित हो जाएगा। और जिसके मन में जीवन की निंदा आ गई, वह जीवन के देवता की खोज कभी भी नहीं कर पा सकता है। कैसे करेगा? और यहां कुछ बात ऐसी है, इस फर्क को थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। एक चित्रकार एक चित्र बनाता है या एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाता है, मूर्ति बनती जाती है, मूर्तिकार अलग है, मूर्ति अलग है; मूर्ति बन गई, मूर्तिकार अलग चला गया, मूर्ति अलग रह गई। मूर्ति अलग हो जाती है, मूर्तिकार अलग हो जाता है, लेकिन परमात्मा इतना भी अलग नहीं है जीवन से, वह तो वैसा ही है जैसे कोई नाचता है, नृत्य करता है, तो नृत्य और नर्तक में जरा भी फर्क नहीं है। नृत्य है वहीं नर्तक है। नर्तक गया नृत्य भी गया। नर्तक के बिना नृत्य नहीं हो सकता। तो परमात्मा और जगत के बीच नृत्य और नर्तक जैसा संबंध है, वह वही है, थोड़े उतरेंगे गहरे तो वह मिल जाएगा।
जैसे हम सागर के किनारे जाएं, और लहरें दिखाई पड़ती हैं। सागर कभी देखा आपने? सागर कभी देखा ही नहीं होगा? लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। सागर दिखाई पड़ता ही नहीं है, सिर्फ लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। लेकिन लहरें सागर नहीं हैं। क्योंकि कोई भी लहर सागर के बिना नहीं हो सकती। लेकिन सागर बिना लहर के हो सकता है। लेकिन सागर लहरों में दबा है, लहरें दिखाई पड़ती हैं, सागर नीचे दबा है। और अगर कोई लहर की निंदा से भर गया, तो सागर के प्रति प्रेम से कैसे भरेगा? क्योंकि लहर का प्रेम ही तो गहरे में उतारेगा, तो सागर में

पहुंचना हो जाएगा। लहर में जो गहरे उतरता है वह सागर में पहुंच जाता है। लेकिन जो लहर से ही लौट आता है वह सागर में कैसे गहरे उतरेगा?
मैं यह कहना चाहता हूं कि संसार में, जीवन में वह जो प्रकट है, जो रूप में चारों तरफ मौजूद है आकार में, उसमें जो गहरे उतरेगा वह निराकार में पहुंच जाता है। वे जो चारों तरफ लहरे हैं अनंत जीवन की, उनको जो प्रेम करेगा वह धीरे-धीरे उसको भी उपलब्ध हो जाता है जो सबके भीतर छिपा है। लेकिन अब तक यह नहीं हो सका। क्योंकि हमने परमात्मा को जीवन से उलटा और दूर रख कर पूजा है। इसीलिए परमात्मा भी मरा हुआ रहा और जीवन अधार्मिक रहा। परमात्मा को जीवन से दूर रखेंगे तो मरा हुआ परमात्मा होगा। शायद इसलिए हमने पत्थर की मूर्तिंयां खोजीं, क्योंकि पत्थर शायद सबसे ज्यादा मरा हुआ मालूम पड़ता है। तो हमने पत्थर की मूर्तियां बनाईं, ताकि हम मरे हुए भगवान को हम मंदिरों में स्थापित कर सकें, उसकी पूजा कर सकें, उसे जैसा चाहें खड़ा कर सकें, जैसा चाहें बिठा सकें। असली परामात्मा चारों तरफ मौजूद है, लेकिन उससे काम नहीं चलता हमारा, हमें एक और परमात्मा अपना बनाना पड़ता है।
यह क्यों हुआ? जीवन के विपरीत और जीवन के विरोध में हमने परमात्मा की धारणा क्यों की? ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ पैथालॉजिकल, कुछ रुग्ण-चित्त लोंगों के प्रभाव में यह परिणाम हुआ है। यह आपको खयाल में आया होगा कभी, जब आप आनंद के क्षण में होंगे, प्रसन्न होंगे, कोई प्रियजन आया होगा, फूल खिला होगा, रात के अंधेरे में दीया जल गया होगा, मन शांत होगा, आनंदित होगा किसी क्षण में जब आप आनंदित होंगे, तब आपके मन में जीवन की निंदा नहीं होगी। जब आप आनंद में होते हैं तब जीवन का स्वीकार होता है। लेकिन सिर में दर्द हो, पेट में तकलीफ हो, बुखार चढ़ा हो, तब सारे जीवन की निंदा शुरू हो जाती है, सब बेकार मालूम पड़ता है। हम भीतर जिस हालात में होते हैं उसको हम प्रोजेक्ट करते हैं।
अमरीकी सुप्रीमकोर्ट का एक चीफ जस्टिस था। वह बीस साल पहले पेरिस आया था, जब जवान था, नई शादी हुई थी। फिर बीस साल बाद वह वापस पेरिस आया। वह बूढ़ा हो चुका था, जिंदगी की रेत हाथ से बिखर जा चुकी थी। पेरिस में अपनी पत्नी के साथ घूम कर उसने बार-बार कहा, पेरिस अब वैसा नहीं मालूम होता। उसकी पत्नी हंसती और चुप रह जाती। जब बार-बार उसने कहा, तो उसने कहा कि माफ करिए, पेरिस तो अब भी वैसा ही है, लेकिन हमारे पास जवानी की आंखें नहीं रह गईं, हम बूढ़े हो गए हैं। वह जो पेरिस हमने देखा था वह तो अब भी वैसा ही है, लेकिन हम बूढ़े हो गए हैं। हमारे भीतर कुछ सिकुड़ गया, टूट गया, अंधेरा हो गया, मरने के करीब हो गया, तो पेरिस वैसा दिखाई नहीं पड़ता है। निश्चित ही, हमें जो दिखाई पड़ता है वह वही नहीं है जो है, हमें वही दिखाई पड़ता है जो हम देख सकते हैं।
मैंने सुना है कि एक गांव में ऐसा हुआ कि एक गरीब आदमी ने गांव के राजा
से एक गाय खरीद ली, वह बहुत मुश्किल में पड़ गया गाय खरीद कर। क्योंकि राजा की गाय थी और गरीब आदमी का घर था, और उसने उसके सामने घास डाला, वह सूखा घास था, और वह गाय ने खाने से इनकार कर दिया। उसे हरी घास सदा मिली थी। उसने बहुत कहा, गरीब ब्राह्मण था, उसने कहा, हम तुझे माता मानते हैं, तेरे लिए आंदोलन करते हैं, जेल भी जाते हैं, और तू इतनी दया नहीं करती अपने बेटे पर कि तू हमारा घास खा ले। लेकिन गाय ने बिल्कुल न सुना। क्योंकि गाय मानती ही नहीं आदमी को अपना बेटा। आदमी कहता हो कहता हो। बल्कि मैंने सुना है कि गाय आपस में विचार करती हैं कि यह अपने आप सेल्फ अपाइंटेड बेटा कैसा? इस आदमी को हमने कब कहा कि बेटा है, गाय मानने को राजी नहीं है, क्योंकि आदमी अभी इस योग्य भी नहीं कि गाय भी उसको बेटा मान सके। बहुत ब्राह्मण रोया- धोया, लेकिन गाय नहीं मानी, नहीं मानी। वह परेशान हो गया।
गांव में एक बूढ़ा था उसके पास गया कि शायद उसके पास कुछ तरकीब हो। उस बूढ़े ने कहा कि तू कुछ न कर बाजार से हरा चश्मा खरीद ला और गाय की आंख पर चढ़ा दे। उस आदमी ने कहाः चश्मा और गाय की आंख पर, आप कह क्या रहे हैं? उसने कहाः तू पहले यह कर फिर लौट कर आ। वह आदमी गया और एक सस्ता चश्मा गाय की आंख पर चढ़ा दिया, हरा था रंग, सूखी घास हरी दिखाई पड़ने लगी, गाय चर गई। मां कहने से जो न मानी थी, चश्मा के बदलने से मान गई। वह आदमी बड़ा चकित हुआ! वह लौट कर

बूढ़े को धन्यवाद देने गया, उसने कहा, श्रीमान, आपको गायों का बहुत अनुभव मालूम हाता है। उसने कहा कि बिल्कुल नहीं, मुझे आदमियों का अनुभव है, उसी आधार पर मैंने कह दिया।
जो दिखाई पड़ता है वह वही नहीं है जो दिखाई पड़ता है, जो हमारी आंख पर चश्मा है, रुग्ण आंख सारे जीवन में असार अर्थहीन को देखती है। इसलिए जितना रुग्ण-चित्त होता है जगत उतना मीनिंगलेस मालूम पड़ता है, अर्थहीन मालूम पड़ता है। जितना प्रफुल्लित-चित्त होता है, जगत उतना अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है।
बच्चों को जगत अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है। अनंत रहस्यों से भरा हुआ मालूम पड़ता है, छोटा कंकड़ भी हीरा मालूम पड़ता है। बच्चे नदी के किनारे छूट जाते हैं तो कंकर-पत्थरों से जेब भर लेते हैं। बूढ़े कहते हैं, फेंको क्या पागलपन कर रहे हो? उन बूढ़ों को पता नहीं कि उन्होंने कंकर नहीं भरे, बच्चों की दुनिया में कंकड़ होते ही नहीं, सब हीरे-जवाहरात ही होते हैं। बच्चे बामुश्किल कंकड़-पत्थर फेंक देते हैं, नहीं मानते हैं बूढ़े तो फेंक देते हैं। उनकी समझ के बाहर होता है कि बात क्या है, कि इतना रंगीन, इतना चमकदार पत्थर, इतना कीमती, प्राणों से प्यारा, फिंकवाया जा रहा हैं? बच्चे आंसू लिए लौट आते हैं। बच्चों की दुनिया में जीवन में एक अर्थ है, क्योंकि बच्चे के भीतर एक प्रफुल्लित... ।
दुनिया के सारे धर्म क्योंकि बूढ़े आदमियों ने निर्मित किए हैं, इसलिए रुग्ण हैं। आज भी मंदिर और मस्जिद में बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ता है, जवान दिखाई नहीं पड़ता, बच्चे नहीं दिखाई पड़ते। कुछ बच्चे दिखाई पड़ते हैं जो बूढ़े ही पैदा होते हैं, उनकी बात अलग है। कुछ बच्चे बूढ़े पैदा होते हैं। कुछ बूढ़े बुढ़ापे तक बच्चे रह जाते हैं, उनकी बात अलग है। लेकिन मंदिर-मस्जिद बूढ़े लोगों से भरी हैं। पिछला सारा धर्म बूढ़े आदमी की दृष्टि है जीवन के प्रति, युवा दृष्टि नहीं है, इसलिए उसमें प्रफुल्लता और आनंद नहीं है। इसलिए पुराने संत को हंसते हुए देखना बहुत मुश्किल है। रोती हुई शक्ल जरूरी क्वालिफिकेशन है संत होने की। और जिन लोगों को रोती हुई शक्ल जन्म से मिलती है वे संत हो सकते हैं। हम सोच ही नहीं सकते कि जीसस कहीं किनारे पर रास्ते में चौरस्ते पर खड़े हुए हंसते हुए मिल जाएं। अगर मिल जाएं तो हमें शक होगा कि कोई और आदमी है। महावीर को हंसता हुआ हम सपने में भी नहीं देख सकते, कितनी आंख बंद करो सोचो कि महावीर हंसते हुए दिखाई पड़ें, नहीं दिखाई पड़ते, इसलिए नहीं कि महावीर नहीं हंसे होंगे, महावीर नहीं हंसेगा तो कौन हंसेगा? जीसस नहीं हंसेगा तो कौन हंसेगा? लेकिन जिन लोगों ने धर्म की व्यवस्था दी है वे सारे के सारे वृद्धचित्त लोग, उन्होंने हंसी भी छीन ली। मेरे पास आ जाते हैं लोग, अगर मैं हंस रहा हूं बैठ कर तो मुझे कई लोग कह जाते हैं कि आप हंसे मत, कोई नया आदमी मिलने आ रहा है वह क्या कहेगा, वह क्या साचेगा कि आप और हंसते हैं इस तरह। उन्होंने महावीर के भी होंठ सी दिए होंगे इन्हीं व्यवस्थापकों ने। ईसाई कहते हैं, जीसस नेवर लॉफ, जीसस हंसे ही नहीं। अब जीसस हंसे ही नहीं, पत्थर थे? और जीसस नहीं हंसेंगे तो कौन हंसेंगा? जीसस हंसे होंगे जैसे झरने खिलखिला कर हंसते हैं, ऐसे हंसे होंगे, जैसे चांद से फूल झड़ जाते हैं, ऐसे हंसे होंगे। लेकिन वे जो बूढ़ों का गिरोह सारे धर्म को व्यवस्था दे रहा है। ध्यान रहे, धर्म तो पैदा हुआ है सदा युवा चित्त में, वह जो यंग मांइड है, और उसको जो व्यवस्था दी है वह सदा दी है बूढ़े चित्त ने। व्यवस्थापक और जन्मदाता अलग-अलग हैं। महावीर से धर्म जन्म लेता है लेकिन जो व्यवस्था देने आते हैं वे बूढ़े लोग हैं। मैंने तो यहां तक सुना है कि एक आदमी को सत्य मिल गया, तो शैतान के शिष्य बहुत घबड़ा गए, और उन्होंने शैतान को जाकर कहा कि गुरुदेव बहुत मुश्किल हो गई, एक आदमी को सत्य मिल गया है, दुनिया मुश्किल में पड़ जाएगी, हमारा राज्य डूबने के करीब है। उसने कहाः घबड़ाओ मत। इतनी देर क्यों लगाई, पहले क्यों न आए? उन्होंने कहा कि दूसरे कामों में लगे थे, काम ही काम है हमारे लिए जमीन पर, पता ही नहीं चला कि यह आदमी कब चुपचाप सत्य को उपलब्ध हो गया? और पता चल जाता अगर यह जंगल जाता, तो हम इसके पीछे लग जाते, लेकिन यह घर में बैठे-बैठे उपलब्ध हो गया। हमको पता भी नहीं था कि आदमी दुकान

करते-करते, बाजार में बैठे-बैठे सत्य को उपलब्ध हो जाएगा! हम तो जंगल में संन्यासियों के पीछे पड़े रहते हैं। हमें इसका खयाल भी नहीं था। लेकिन हो गया है, जल्दी करें। उसने कहाः कोई फिकरमत करो। तुम ढोल ले लो, मंजीरे ले लो, और गांव-गांव में डूंडी पीटो कि फलां आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया है। उन्होंने कहा कि हम अपने हाथ से अपनी हत्या बुला रहे हैं, हम डूंडी पीट कर खबर करें? तुम फिकर मत करो, उस शैतान ने कहाः तुम तो खबर कर दो फौरन। मरे, बूढ़े, बीमार लोग उसके आस-पास इकट्ठे हो जाएंगे, वे जल्दी से व्यवस्था दे देंगे। और जहां व्यवस्था दी गई कि वहां सत्य मर जाता है। फिर फिकर मत करना।
महावीर एक युवा चित्त हैं, जो बूढ़े हो ही नहीं सकते। कभी आपने महावीर
की कोई बूढ़ी मूर्ति देखी? ऐसा नहीं कि महावीर बूढ़े न हुए होंगे। शरीर है तो बूढ़ा होगा। कभी आपने बुद्ध की बूढ़ी तस्वीर देखी? बुद्ध बूढ़े हुए, अस्सी साल रहे, तो बूढ़े हुए, जब मरे तो बूढ़े हुए ही होंगे, लेकिन फिर यह मूर्ति जवान क्यों? हम सोच ही नहीं पाते कृष्ण को बूढ़ा, मुश्किल है बहुत, वे बूढ़े भी हो जाएंगे तो भी नाचते रहेंगे, तो फिर कैसे बूढ़े होंगे, बहुत मुश्किल है। वे बूढ़े भी हो जाएंगे तब भी उनका गीत चलता रहेगा, बांसुरी बजती रहेगी, वे बूढ़े नहीं हो सकते। हमने बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की, राम की, बूढ़ी तस्वीरें नहीं बनाईं, उसका कारण है। वे हमेशा युवा थे, भीतर से युवा थे, चित्त सदा ताजा था, वह कभी बूढ़ा नहीं हुआ। उन्होंने जिंदगी को सदा ताजगी से, प्रफुल्लता से, आनंद से देखा। लेकिन उनके आस-पास जो गिरोह इकट्ठा होता है--अनुयायियों का, भक्तों का, श्रद्धालुओं का, वे डुबाते थे। सारे धर्म को अनुयायी और व्यवस्था देने वाले लोग डुबाते रहे। उन्हें वह सुख कौन होता है, यह बड़े मजे की बात है।
जब एक कृष्ण जैसा आदमी गांव में नाचने लगता है और गीत गाने लगता है और उसकी आंखों से एक रोशनी टपकने लगती है, तो उसके आस-पास कौन इकट्ठा होता है? उसके आस-पास वे लोग इकट्ठे हो जाते हैं जो दुखी हैं और सोचते हैं कि हमें भी ऐसा आनंद कैसे मिल जाए? जब एक युवा-चित्त प्रकट होता है तो बूढ़ा चित्त आस-पास इकट्ठा हो जाता है कि शायद कोई तरकीब से मैं भी इसी आनंद को उपलब्ध हो जाऊं। जब कोई स्वस्थ्य आदमी आता है तो बीमार इकट्ठे हो जाते हैं कि शायद हमें भी स्वास्थ्य मिल जाए। तो जब भी कोई धार्मिक चेतना पैदा होती है तो उसके आस-पास रुग्ण, पैथालॉजिकल, बीमार चित्त इकट्ठे हो जाते हैं। वे इकट्ठे होते हैं इस आशा में कि हम स्वस्थ्य हो जाएं, हम भी आनंदित हो जाएं। लेकिन वे इतने क्रोनिक, वे इतने ज्यादा गहरे बीमार होते हैं कि वे तो नहीं हंस पाते, वे जो एक हंसी का फव्वारा पैदा हुआ था वे उसे घेर कर रोने की दुनिया में बदल देते हैं। और व्यवस्था हो जाती है।
अब तक हंसने वाला धर्म पैदा नहीं हो सका एक धर्म जो हंस सके। एक धर्म
जो जीवन के साथ नाच सके। एक धर्म जो जीवन को आलिंगन कर सके। और जीवन के क्षुद्रतम में विराट को देख सके, ऐसा धर्म पैदा नहीं हो सका। इसलिए मैं कहता हूं कि अतीत का सारा धर्म रुग्ण और बीमार है। स्वस्थ्य धर्म चाहिए। स्वस्थ धर्म की पूरी व्यवस्था और होगी। स्वस्थ धर्म की पूरी अवधारणा और होगी। स्वस्थ धर्म का पूरा आयाम, दिशा और होगी। पहला आयाम तो यह तोड़ देना पड़ेगा कि जीवन और परमात्मा के बीच कोई शत्रुता है, जीवन असार है, निंदा योग्य है यह छोड़ देना होगा। जीवन दुख है, जीवन बुरा है, यह छोड़ देना होगा। जीवन दुख हो जाता है अगर हमारे पास दुख को ही खोजने की आंख हो। जीवन आनंद हो जाता है अगर हमारे पास आनंद को खोजने की आंख हो। जीवन फूल बन जाता है अगर हम फूल खोजने में समर्थ हैं। जीवन कांटे हो जाता है अगर हम कांटे ही गिनने में समर्थ हों।
कोई मुझसे कहता था कि अगर एक निराशावादी को हम गुलाब के पौधे के पास खड़ा कर दें, तो उसे फूल दिखाई ही नहीं पड़ेंगे, क्योंकि वह कांटे गिनने में लग जाएगा। कांटे गिनने में कई कांटे चुभ जाएंगे। जो कांटे गिनेगा वह चुभने से बच भी नहीं सकता। और जब कांटे चुभ जाएंगे तो क्रोध भी आ जाएगा, और कांटों की निंदा भी आ जाएगी। और जिसके हाथ से खून बह रहा हो और आंख से क्रोध बह रहा हो और कांटे ही कांटे जिसे दिखाई पड़ रहे हों, उसे फूल दिखाई

पड़ेंगे गुलाब के? उसे नहीं दिखाई पड़ेंगे। वह शायद समझेगा कि सब धोखा है, सब माया है, फूल सब इलुजन है, असली तो कांटा है। यह फूल जो दिखाई पड़ रहा है, जरूर धोखा है। यह फूल शायद कांटों की तरकीब है लोगों को पास बुलाने की कि लोग पास आ जाएं और कांटे चुभ जाएं। वह कहेगा कि कांटे ही कांटे हैं, फूल कहां हैं? और यदि फूल दिखाई पड़ता है तो वह धोखा होगा। क्योंकि कांटों के बीच फूल खिल कैसे सकता है? जिस पौधे में कांटे ही कांटे खिले हैं वहां फूल हो कैसे सकता है? लेकिन एक आशावादी को गुलाब के फूल के पास खड़ा कर दें, तो उसकी नजर पहले ही फूल पर पड़ जाएगी, कांटे पर पड़नी संभव नहीं है। वह फूलों की तलाश में है। जो जिस बात को खोज रहा है, वह उसे मिल जाता है। वह फूल पर पहली ही उसकी नजर पड़ जाएगी। फूल न तो चुभते हैं और न खून गिरा जाते हैं। लेकिन फूलों का भी अपना ही स्पर्श है, जो भीतर फूलों को खिला देता है। और जब फूल का आनंद, फूल का सौंदर्य भीतर फूल खिला दे, तो उसके पास जो कांटे हैं वे भी फिर कांटे नहीं मालूम पड़ते, वे भी फिर फूल के संगी और साथी मालूम पड़ते हैं, हैं भी। क्योंकि वे सब कांटे फूल की रक्षा कर रहे हैं। वे किसी को गड़ने को नहीं बने हैं, वे फूल को बचाने को बने हैं। और जब कोई फूल के प्रेम में इतना डूब जाता है कि फूल से एक हो जाता है, तो फिर कांटे मिट जाते हैं, क्योंकि एक ही रसधार में फूल है, उसी रसधार से कांटा भी आया है, और दोनों एक ही रसधार के हिस्से हैं। इसलिए कांटा कांटा कैसे हो सकता है जब फूल की रसधार से ही आया है।
हम कैसा देखते हैं इस पर सब निर्भर है। जीवन असार दिखाई पड़ा है क्योंकि हमने दुखी चित्त से जीवन को देखा है। फिर जब हम दुखी चित्त से जीवन को देखते हैं तो वह असार दिखाई पड़ता है। और जब असार दिखाई पड़ता है तब हम और दुखी होते हैं। हम और दुखी होते हैं वह और ज्यादा असार दिखाई पड़ता है। फिर एक चक्कर शुरू हो जाता है, जिसमें अंतिम निर्णय होता है कि यह सब नरक है, इससे छुटकारा चाहिए। फिर आदमी भागना शुरू कर देता है। यह अब तक की कहानी है।
यह आगे की कहानी नहीं होनी चाहिए। किस भांति रुग्ण-चित्त लोगों ने हमें प्रभावित किया है। स्वस्थ-चित्त आदमी हमें प्रभावित नहीं कर पाया। और हमने ऐसी-ऐसी बातें खोज ली हैं जिससे हम रुग्ण-चित्त को बहुत आदर देने लगे हैं। अगर एक आदमी नंगा सड़क पर खड़ा हो जाए, भूखा रहे, उपवास करे, बीमार रहे, पीकल की तरह पीला हो जाए, तो हम कहेंगे कि तेज प्रकट हो रहा है, त्याग का तेज प्रकट हो रहा है। वह बेचारा सिर्फ पीला हुआ जा रहा है भोजन की कमी से। हम कह रहे हैं कि तेज प्रकट हो रहा है। अगर हमारे सब त्यागी, तेजस्वी खड़े किए जाएं तो उसमें से निन्यानबे प्रतिशत बीमार और रुग्ण होंगे। लेकिन हमने एक खयाल बना लिया है।
क्रोपाटकिन नाम का एक जर्मन यात्री भारत से वापस लौटा, तो उसने अपनी
एक किताब में एक अदभुत बात लिखी। उसकी किताब मैं पढ़ रहा था, तो मुझे लगा कि उसने हमें पढ़ा है। बड़ा व्यग्ंय किया है। उसने लिखा है कि हिंदुस्तान जाकर मुझे पता चला कि टू बी हेल्दी इ.ज टू बी अनस्प्रीचुअल। स्वस्थ्य होना गैर-आध्यात्मिक होना है। और बीमार होना, रुग्ण होना, गंदा होना, कुरूप होना परमहंस होने की भूमिका है। जब तक कोई आदमी पाखाना साथ रख कर खाना न खा सके, तब तक परमहंस नहीं है। जब तक किसी आदमी के रग-रग, रेशे-रेशे शरीर के निकल कर हड्डी-हड्डी दिखाई न पड़ने लगे, तब तक वह तपस्वी नहीं है। जब तक कोई आदमी बिल्कुल मरने के किनारे न पहुंच जाए, तब तक, तब तक वह त्यागी नहीं है। हम मृत्यु की पूजा कर रहे हैं क्या कि जीवन की? हम मृत्यु की ही पूजा कर रहे हैं, हमारे मंदिरों में मृत्यु का देवता ही विराजमान मालूम पड़ता है। हमारे चित्त में भी मृत्यु का देवता विराजमान है। रुग्ण को, बीमार को, गंदगी को, कुरूपता को, सबकी पूजा हो रही है। हालांकि हमने सबके लिए एक्सप्लेनेशंस और व्याख्याएं खोज ली हैं, हम व्याख्याएं खोजने में बहुत चतुर हैं।
अभी एक संन्यासी मुझे मिलने आए थे। उनके पास बैठना बहुत कठिन था, आध्यात्मिकता उनकी बहुत दुर्गंध फेंक रही थी। वे स्नान नहीं करते हैं, दतून नहीं करते हैं। अब दांतों को क्या पता कि आध्यात्मिक आदमी के दांत

में बास नहीं आनी चाहिए। अब शरीर को क्या पता कि इस पर धूल नहीं जमनी चाहिए और पसीना नहीं बहना चाहिए। शरीर अपने ढंग से चलता है, चाहे किसी का शरीर हो। तो मैंने उनसे कहा कि इतनी दुर्गंध आ रही है आपके शरीर से। उन्होंने कहा कि यह शरीर तो सब मिट्टी है, इसका क्या माया-मोह, असली चीज तो आत्मा है। मैंने उनसे कहा कि जिसके शरीर में भी अति दुर्गंध है, उसकी आत्मा में सुगंध होने की संभावना कम है। क्योंकि जिसकी नींव ही सड़ गई हो उसके मंदिर का कलश आकाश में उठा होगा, यह बड़ा डर है, मुश्किल है। क्योंकि सारी आत्मा शरीर पर ही खड़ी होती है, शरीर उसका मकान है। हम एक आदमी के मकान में प्रवेश करते हैं, तो आदमी के बाबत उससे बिना मिले बहुत कुछ पता चल जाता है। किसी आदमी के घर में जाने से जरूरी नहीं कि उस आदमी से मिले हीं, उसके घर को देख कर ही बहुत कुछ पता चल जाता है। क्योंकि वह आदमी ही रहता है न वहां? वह आदमी जिस ढंग से रहता है, वह उस आदमी के होने का ही तो सबूत है।
लेकिन उन्होंने कहा कि नहीं, हमारे शास्त्र में वर्जित है स्नान करना, क्योंकि स्नान का मतलब है शरीर को सजाना; हम शरीरवादी नहीं हैं, हम आत्मवादी हैं। मैंने कहा कि भोजन करते हैं या नहीं? भोजन तो करता हूं। आत्मवादी को भोजन भी नहीं करना चाहिए। श्वास लेते हैं या नहीं? श्वास तो लेता हूं। आत्मवादी को श्वास भी नहीं लेनी चाहिए। मैंने कहाः आप जिंदा कैसे हैं, आत्मवादी को एकदम मर जाना चाहिए, आत्मवादी को आत्मघात के सिवाय कोई रास्ता नहीं, जैसा आत्मवाद रहा है अब तक। अगर जीना हो तो पापी हो जाना पड़ेगा। आत्मघात, इसलिए कुछ धर्मों में तो मरने को भी बड़ी ऊंची बात दे दी है, संथारा और न मालूम क्या-क्या पागलपन।
एक आदमी अगर मरे तो परमत्याग हो जाता है। दो तरह के, फिर कुछ लोग इकट्ठा मरने की हिम्मत जुटा लेते हैं। कुछ लोग धीरे-धीरे मरते रहते हैं। फिर भी इकट्ठा मर जाने वाले बेहतर हैं, समाप्त तो हो जाते हैं। जो धीरे- धीरे मरते हैं वे अपने चारों तरफ भी दुर्गंध और गंदगी फैलाते हैं। कुछ लोग इकट्ठे मर सकते हैं, कुछ धीरे मरते हैं। लेकिन धर्म क्या मरना सिखाता है या कि जीना? धर्म मरने की व्यवस्था है या जीने की कला है? पर अब तक ऐसा रहा है।
मैं सोचता हूं कि यह जो आदमी गंदगी का आरोपण किए हुए बैठा है, यह कह तो
यह रहा है कि मेरे शास्त्र में लिखा है, इसलिए मैं ऐसा कर रहा हूं। लेकिन जहां तक मेरी समझ है वह यह है कि यह आदमी गंदा रहना चाहता है। और शास्त्र बहाना है। यह आदमी गंदा रहना चाहता है। और शास्त्र बहाना है। और उसने गंदगी को भी आध्यात्मिक व्याख्या दे दी है। इस तरह के और गंदे लोग भी रह गए होंगे उन्होंने शास्त्र भी लिख दिया होगा। लेकिन एक आदमी भूखा मरने से भी पीड़ित हो सकता है। किसी आदमी का स्वास्थ्य भी जा सकता है, लेकिन वह दूसरों को भी समझाने जाएगा अस्वाद। किसी आदमी का स्वाद चला गया हो, बीमार का चला जाता है। स्वस्थ आदमी का लक्षण है कि वह कितना स्वाद ले सकता है। जितना स्वस्थ आदमी है उतना ज्यादा स्वाद लेगा। और यह बड़े मजे की बात है कि जो जितना ज्यादा स्वाद लेता है स्वाद से उतना ही मुक्त हो जाता है। जिसने पूरा स्वाद ले लिया है वह स्वाद से बिल्कुल मुक्त हो जाता है। लेकिन बीमार आदमी को स्वाद नहीं आता। बुखार से भरे आदमी को स्वाद नहीं आता, वह यह नहीं कहता कि मैं बुखार से भरा हूं, वह जिसको स्वाद आता है वह उससे कहता है कि तुम पापी हो, स्वाद ले रहे हो? स्वाद पाप है। स्वाद लेना फिर भी बंद नहीं होगा स्वस्थ आदमी का जब तक कि वह भी बीमार होने की पूरी व्यवस्था न कर ले। बीमार हो जाएगा तो उसका भी स्वाद खो जाएगा।
जीवन की सब तरफ से निंदा की है रुग्ण-चित्त लोगों ने। और उन्होंने ढंग
से व्याख्या कर दी है कि हजारों साल से सुनने के बाद हमको भी लगता है कि ठीक ही कहते मालूम होते हैं। क्योंकि ठीक का आमतौर से वही मतलब होता है जो बहुत दिन से कहा जा रहा है। बहुत बार सुनने से ठीक मालूम पड़ने लगता है। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः किसी भी झूठ को सच बनाना हो, तो एक ही तरकीब है, उस झूठ को बार-बार दोहराए चले जाओ। बस दोहराए चले जाओ, रिपिटीशन, सूत्र दोहराए चले जाओ।

अभी देखते हैं न, सड़क पर पनामा सिगरेट का बोर्ड लगा हुआ है। तो पहले बोर्ड लगा होता था, वह सीधे ही प्रकाश में रहता था, जलता-बुझता नहीं था। अब वह एडोल्फ हिटलर की किताब पढ़ ली लोगों ने। अब उन्होंने जलते-बुझते बल्ब लगा दिए हैं। उसका मतलब हैः रिपिटीशन। आप रास्ते से निकलेंगे--पनामा बुझ गया, फिर दुबारा जला, फिर पढ़ना पड़ेगा--कोई उपाय नहीं है। फिर बुझ गया, फिर जला, फिर पढ़ना पड़ेगा। आप सात-पांच मिनट उसके सामने गए तो आपको दस दफा पढ़ना पड़ेगा--जितनी दफा जलेगा-बुझेगा। अगर एक ही तरह का प्रकाश होता तो एक ही बार पढ़ने से छुटकारा हो जाता। वह बार-बार जलने-बुझने से आपको दस दफा पढ़ना पड़ रहा है। लेकिन आप कहेंगे, क्या फर्क पड़ता है? मैंने दस दफा पढ़ लिया तो कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन मन में दस दफा पनामा शब्द दोहराया, मन में पनामा बैठ गया। अखबार खोला--पनामा, रेडियो खोला--पनामा। मित्र मिले, सिगरेट देखी, पैकेट देखा--पनामा। फिर आप बाजार गए सिगरेट खरीदने और दुकानदार ने पूछा कौन सी सिगरट चाहिए, आपने कहा कि पनामा दे दीजिए। और आपने सोचा की हम सोच कर आए हैं। आप गलती में हैं। आप सोच कर नहीं आए हैं। होशियार लोगों ने सिर्फ आपको सोचने के लिए मजबूर कर दिया है, आपको परसुएट कर लिया है।
अभी बहुत अदभुत आदमी है उसने एक किताब लिखी है। उस किताब का नाम हैः द हिडन परसुएटर्स। छिपे हुए फुसलाने वाले लोग। वे चारों तरफ से फुसला रहे हैं। वह हजार ढंग से फुसला रहे हैं। एक बात अगर दोहराई जाए, दोहराई जाए, दोहराई जाए, बिल्कुल बिना फिकरकिए कि वह क्या है। आपको लोग मिल जाएंगे मानने वाले, और जब लोग मिल जाएंगे मानने वाले तो बहुत डर है कि आप भी मानने लगें। क्योंकि इतने लोग जब मान रहे हैं तो ठीक ही होगा।
मैंने सुना है कि एक पत्रकार मर गया था। वह मर कर सीधा स्वर्ग पहुच गया। क्योंकि पत्रकारों को यह खयाल होता है कि उनको तो नरक जाना नहीं पड़ेगा। उनके लिए तो सब दरवाजे खुले हैं। मिनिस्टर के दरवाजे जाएं तो जल्दी से कहता है कि भीतर आइए। उसने सोचा कि भगवान भी डरता तो होगा पत्रकारों से, जल्दी दरवाजा खोलेगा। लेकिन दरवाजा बंद था। बहुत दरवाजा ठोंका-पीटा। पत्रकार नाराज भी बहुत हो गया। कई दफा कहा कि जाकर अभी रिपोर्ट लिख दूंगा। बामुश्किल द्वारपाल ने झांक कर देखा, कहा कि कौन हैं आप? उसने कहा कि मैं पत्रकार हूं, आप समझते नहीं है, यह मेरा कार्ड देखिए, फलां-फलां पत्र का प्रतिनिधि हूं। उसने कहा कि होंगे, एक तो स्वर्ग में, एक तो पत्र चलते नहीं हैं, कोई पढ़ता नहीं, क्योंकि किसी की किसी में उत्सुकता ही नहीं है। और यहां कोई ऐसे उपद्रव भी नहीं होते कि अखबारों में छापने लायक खबरें मिल जाएं, बहुत दिन से यहां कुछ होता ही नहीं। एक अखबार है वह भी खाली कागज ही रहता है, उसमें कुछ रहता ही नहीं। और दस पत्रकारों की जगह है वह सदा से भरी हुई है। आप नरक की तरफ चले जाएं वहां काफी काम है।
उसने कहाः लेकिन मैं स्वर्ग में रहना चाहता हूं। अब एक काम करते हैं,
कि दस, मुझे एक दिन के लिए भीतर आ जाने दे, चौबीस घंटे में एक को दस में से राजी कर लूंगा नरक जाने के लिए, फिर तो मैं रह सकता हूं। तो उसने कहाः तुम्हारी मर्जी, आ जाओ, हमें क्या फर्क पड़ता है। उसने द्वार खोल दिए और कहा कि चौबीस घंटे में लौट कर बाहर हो जाना अगर कोई राजी न हो। वह पत्रकार भीतर गया। जो भी उसे मिला उसने कहा कि सुना आपने नरक में एक नया अखबार निकल रहा है, एडिटर की जरूरत है। सब-एडिटर की जरूरत है। रिपोर्टर्स की जरूरत है। बड़ी लंबी तनख्वाहें हैं, कार का इंतजाम है, बंगले का इंतजाम है, चपरासी का इंतजाम है। शाम तक उसने सारे स्वर्ग में खबर पहुंचा दी। सोचा एकाध पत्रकार तो बहक के नरक की तरफ चला जाएगा।
दूसरे दिन सुबह जब वह गया तो द्वारपाल ने उसे देख कर एकदम दरवाजे पर ताला लगा दिया और कहा कि बाहर मत चले जाना। उसने कहाः क्यों? उसने कहा कि दसों के दस चले गए हैं। अब तुम रहो, क्योंकि यहां तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। उसने कहा कि अब मैं बिल्कुल नहीं रह सकता, जब दस गए हैं तो जरूर बात में कोई दम होगा। मुझे बाहर जाने दो। क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि झूठी बात को दस लोग मान लें। कभी नहीं हो सकता। उस पहरेदार ने कहा कि अरे पागल, तूने ही यह अफवाह उड़ाई है। उसने कहाः चौबीस घंटे हो गए, बार-बार देहराने से मैं ही भूल गया हूं कि यह सच है कि झूठ है?

आदमी झूठ बोले, दस-पांच दिन एक झूठ बोलते रहें, पंद्रहवें दिन आपको शक होगा कि यह सच है या झूठ? दोहराने से सब झूठ सत्य जैसे मालूम होने लगते हैं। यह एक बहुत बड़ा झूठ है कि जीवन असार है। इससे बड़ा कोई झूठ नहीं। क्योंकि अगर जीवन ही असार है तो फिर सार क्या होगा? मैं इसलिए कहता हूं कि इससे बड़ा झूठ नहीं। अगर जीवन ही निंदा योग्य है तो फिर स्वागत योग्य क्या होगा? नहीं यह बड़ा झूठ है लेकिन यह बहुत बार दोहराया गया है, और हजारों साल से दोहराया जा रहा है। और आज तक के मनुष्य का मन इसी झूठ के इर्द-गिर्द बनाया गया था, कि जीवन असार है, जीवन बुरा है, जीवन पाप है। इस दोहराने में तरकीबें उपयोग की गई हैं, कि इसे कैसे समझाया जाए। समझाने के बड़े रास्ते हैं। अगर मैं किसी से कहूं कि फलां व्यक्ति से मेरा प्रेम है, वह पूछे, प्रेम? प्रेम में क्या रखा हुआ है? तो बताना मुश्किल हो जाएगा। अगर वह कहे कि प्रेम में क्या रखा है? तो मैं क्या बताऊं? अगर मैं कहूं कि उस व्यक्ति के पास बैठने से मुझे बहुत आनंद मिलता है, वह कहता है कि बड़े पागल हो, पास बैठने से क्या मिल सकता है? तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण अनुभव हैं वे कोई भी बताए नहीं जा सकते, लेकिन उनका खंडन किया जा सकता है। यह बड़े मजे की बात है, जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसका समर्थन करना मुश्किल है। उसका खंडन करना बहुत आसान है। अगर मैं आपको दिखाऊं कि देखें चांद कितना सुंदर है और आप कहें कि क्या रखा है इसमें, तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। क्योंकि मैं कैसे समझाऊं कि चांद सुंदर है? चांद का सुंदर होना इतना डेलीकेट, इतना नाजुक मामला है कि मुझे लगता है कि चांद सुंदर है, सुंदर होने को उसमें है क्या? एक गोला लटका हुआ है जो चमक रहा है, इसमें सौंदर्य क्या है? मैं आपसे कहता हूं कि यह फूल बहुत सुंदर है, आप कहते हैं कि इसमें कुछ भी तो नहीं है, लाल रंग की पंखुड़ियां लगी हुई है और क्या है? मैं कहता हूं, ये तितली देखते हैं, आप कहते हैं, इसमें कुछ दम नहीं है, जरा इसके दोनों पंख उखाड़ दो, अभी मर जाएगी। तो निंदा बहुत आसान है, प्रशंसा बहुत कठिन है। निंदा एकदम ही आसान है, वैसे ही जैसे कुछ चीज सृजन करना मुश्किल है। तोड़ देना, विनष्ट कर देना बहुत आसान है।
मैं एक जगह गया हुआ था एक गांव में, एक मित्र मुझे पहाड़ पर ले गए थे। वहां एक जलप्रपात है। रात थी चांदनी, पूरा चांद था। हम गए। एक मील नीचे उतरे हैं। पहाड़ी पर दूर से ही एक मील फासले से गर्जन सुनाई पड़ रहा है जलप्रपात का। निमंत्रण आ रहा है, पुकार आ रही है, हवाएं ठंडी हो गई हैं। मैं उतर कर भागने लगा हूं। मेरे मित्र से मैंने कहा कि जल्दी आओ, फिर मैंने उनसे कहा कि तुम्हारा ड्राइवर गाड़ी के अंधेरे में क्यों बैठा रहे, बाहर इतना चांद बरस रहा है, उसे भी बुला लो। वे हंसे, उन्होंने कहाः आप ही बुला लें। मैं कुछ समझा नहीं। मैं गया लेने उस ड्राइवर को, कहा, पागल, भीतर क्यों बैठा है, तू भी आ? उसने कहाः जाइए आप ही जाइएः मैंने कहाः क्यों? उसने कहाः वहां कुछ भी नहीं है, मैं तो हैरान होता हूं कि लोग क्यों इतनी मेहनत करते हैं? कुछ पत्थर पड़े हैं और ऊपर से पानी गिर रहा है, और कुछ भी नहीं है।
मैं अवाक खड़ा रह गया! वह ठीक कह रहा था। आखिर एक जलप्रपात पर, एक वाटरफॉल पर होगा भी क्या? पत्थर पड़े होंगे, पानी गिरता होगा। बड़ी सरल व्याख्या कर दी उसने। मैंने उससे कहा कि पागल, तू नाहक ड्राइवरी कर रहा है, तुझमें योग्यता तो धर्मगुरु हो जाने की है।
यह तो ट्रेड सिक्रेट है धर्मगुरुका कि प्रत्येक चीज को तोड़ कर कह दे
कि इसमें क्या है। कुछ भी तो नहीं है। एक सुंदर स्त्री में क्या है? एक सुंदर पुरुष में क्या है? हड्डी-मांस-मज्जा, मवाद, पीक, खून, ये सब हैं। सारे शास्त्र इस नासमझी से भरे हुए हैं। इतने रस से उन्होंने यह विवरण दिया है, ऐसा मालूम पड़ता है कि ये लोग, इनका परमात्मा से कोई वास्ता था या किसी अस्पताल में नौकरी करते थे? बस खून मांस-मज्जा-हड्डी इस सबका विवरण दिया हुआ है। इन्हें शायद इससे ज्यादा कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा। लेकिन जब एक सुंदर आदमी खड़ा होता है तो हड्डी और मांस और मज्जा ही नहीं होता, हड्डी-मांस और मज्जा से प्रकट होता है। लेकिन जो प्रकट होता है वह

कुछ और है। जब एक जलप्रपात, एक नदी एक पहाड़ से गिरती है, तो पत्थर और पानी ही नहीं होता, पत्थर और पानी से प्रकट होता है। लेकिन जो प्रकट होता है वह कुछ और है। लेकिन वह जो प्रकट होता है और पकड़ में नहीं आता, अगर सहानुभूति की आंख हो, प्रेम की आंख हो तो दिखाई पड़ जाए। अगर प्रेम की आंख न हो, सहानुभूति की आंख न हो, तो पत्थर और पानी ही रह जाएगा और वह दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा।
पिकासो है एक बड़ा चित्रकार। एक अमरीकी करोड़पति ने अपना एक चित्र बनवाया। उससे दाम तय नहीं किए। करोड़पति था इसलिए सोचा कि दाम तय करना गरीब आदमी का लक्षण है। पता तो था कि पिकासो अनाप-शनाप दाम मांगता है, लेकिन हर अमीर को अपना चित्र पिकासो का बनवाना जरूरी है, तभी अमीरी का पता लगता है कि इतना खर्चीला चित्र बनवाया। तो कुछ पूछा नहीं। चित्र बन गया। छह महीने, नौ महीने लग गए। बार-बार खबर की, पिकासो ने कहा, जल्दी मत करिए, भगवान भी जब आपको बनाता है तो नौ महीने लग जाते हैं। मैं तो कोशिश कर रहा हूं। साल पूरा हुआ, दो साल होने लगे, उसने कहा, भई, बहुत देर लग गई। पिकासो ने कहाः आ जाइए, ले जाइए, चित्र हालांकि अभी अधूरा है। वह आदमी आया और उसने कहा कि दो साल हो गए और अधूरा है? तो उसने कहा कि आप मर जाएंगे और अधूरे रहेंगे, पूरे तो आप भी नहीं हो पाएंगे, यह तो चित्र है बेचारा, मैंने कोशिश बहुत की लेकिन अधूरा है। फिर भी उसने कहाः अच्छा मैं इसे ले जाता हूं, जैसा भी है। कितने दाम हुए? पिकासो ने दाम बताए, तो करोड़पति घबड़ा गया, उसने कहा, पचार हजार डालर? पचास हजार डालर? उसने कहाः इसमें है ही क्या जिसके पचास हजार डालर मांग रहे हो? थोड़ा सा रंग पोत दिया है, कैनवस का टुकड़ा है और रंग है, और है ही क्या?
पिकासो ने अपने सहयोगी को कहा कि चित्र भीतर ले जाओ, इस आदमी की आंख भी नहीं पड़नी चाहिए, चित्र खराब हो जाएगा। और एक कैनवस का टुकड़ा ले आओ इससे दोगुना बड़ा और रंग की भरी हुई ट्यूबें ले आओ, और टुकड़े को रंग दो और इस सज्जन को दे दो, और कहो कि बिना पैसे दिए ले जाओ। इन्हें जो करना हो कर ले। वह ले आया। तो उस करोड़पति ने कहा कि पागल हो गए हैं आप, मैं इस रंग और कैनवस का क्या करूंगा? तो पिकासो ने कहा कि फिर जो मैं दे रहा था वह रंग और कैनवस ही नहीं था, रंग और कैनवस मे प्रकट हुआ था कुछ। जिसके मैं दाम मांगता हूं वह कुछ अलग है, उसका रंग कैनवस से कोई मतलब नहीं। रंग, कैनवस यह रहा, इसे तुम ले जाओ।
यह पिकासो जो कह रहा है ठीक कह रहा है। एक फूल में पंखुड़ी ही नहीं है,
और एक सुंदर चेहरे में हड्डी-मांस-मज्जा ही नहीं है, और इस जगत में जो हमें दिखाई पड़ रहा है वही नहीं है, न दिखाई पड़ने वाला मौजूद है। लेकिन सहानुभूति और प्रेम से भरी आंख चाहिए तब वह दिखाई पड़ेगा, नहीं तो वह दिखाई नहीं पड़ेगा।
निंदा और खंडन करने वाले लोगों ने प्रत्येक चीज की एनालिसिस कर दी है, विश्लेषण कर दिया है और सामने रख दिया है कि यह रहा, बात खत्म हो गई। मैं आपसे कहना चाहता हूंः अब तक का धर्म विश्लेषण पर खड़ा है। मैं जिस धर्म की बात कर रहा हूं उसका एक सूत्र हैः विश्लेषण नहीं संश्लेषण, एनालिसिस नहीं सिंथेसिस। उसको मत देखो जिसके जोड़ से बना है, उसको देखो जो जोड़ कर बाहर है और जोड़ से प्रकट हो रहा है। पत्थर और पानी मत देखो, प्रपात देखो, प्रपात बात ही और है। पत्थर और पानी से कोई मतलब नहीं है। पत्थर और पानी सिर्फ प्रपात को प्रकट करने के माध्यम हैं। केमिकल्स को मत देखो, खनिजों को मत देखो, फूल को देखो, फूल कुछ और है--न पंखुड़ी है, न पत्ता है, न रंग है, फूल कुछ और है। रंग, पंखुड़ी, पत्ते से प्रकट हुआ है। हड्डी-मांस-मज्जा मत देखो, आदमी देखो, आदमी परमात्मा है, हड्डी-मांस-मज्जा से प्रकट हुआ है। लेकिन जब परमात्मा प्रकट होता हो हड्डी-मांस-मज्जा से तो हड्डी-मांस-मज्जा भी हड्डी-मांस-मज्जा नहीं रह जाती, क्योंकि जिसे परमात्मा ने अपने प्रकट होने के लिए चुना वह सब पवित्र हो गया है। जिससे परमात्मा प्रकट हुआ है वह सब पवित्र हो गया है। जहां उसके चरण पड़े हैं वहीं पवित्रता हो गई है। जहां उसकी आंख है वहीं पवित्रता हो गई है। जहां उसका फूल खिला वहीं पवित्रता हो गई है।

लेकिन पुराना धर्म बहुत गंदी बातों से भरा हुआ है। क्योंकि वह असार सिद्ध करने की चेष्टा में लगा था। उसने सिद्ध भी कर दिया, वह सफल भी हो गया दुर्भाग्य से, उसने सिद्ध भी कर दिया कि सब असार है। और सब असार अब जब मालूम होने लगा तब हमें मुश्किल खड़ी हो गई। आज शिक्षित आदमी जीने की बजाए मरना पसंद कर रहा है।
अभी मैं एक घंटा यहां बोलूंगा उस बीच न मालूम कितने लोग पृथ्वी पर आत्महत्या कर लेंगे। अंदाजन हर सेकेंड में एक आदमी आत्महत्या कर रहा है। हर मिनट में साठ आदमी मर रहे हैं। ऐसे तो बहुत लोग मर जाएंगे। आत्महत्या करके साठ आदमी मर रहे हैं हर मिनट। क्या हुआ है यह, असार सिद्ध हो गया है? अब वे संन्यासी भी नहीं होते, वे कहते कि इतनी देर क्या लगानी कि तीस-चालीस साल में मरे, अभी मर जाते हैं। विकार है, कुछ सार नहीं है, सब मीनिंगलेस है। शेक्सपीयर के वचन इस सदी की छाती पर खोद देने जैसे हैं। शेक्सपीयर ने कहीं कहा है कि जिंदगी सिर्फ एक शोरगुल है और कुछ भी नहीं। सिर्फ शोरगुल और कुछ भी नहीं? इसमें सारी पुरानी जो चिंतना है वह इसमें पकड़ गई है। और उस व्यक्ति ने मनुष्य को धार्मिक नहीं बनने दिया है। धार्मिक मनुष्य कैसे पैदा हो सकता है?
तो दूसरा सूत्र आज मैं आपसे कहना चाहता हूं और वह यह कि धर्म को जीवन स्वीकार का, लाइफ अफर्मेशन का, जीवन-प्रेम का, जीवन-आलिंगन का धर्म बनाना पड़ेगा। परमात्मा की बात ही छोड़ देनी चाहिए। जीवन काफी है। अगर कोई आदमी जीवन में उतर जाए तो परमात्मा को पहुंच जाता है, वह दूसरी बात है। सीधा जीवन काफी है। लेकिन इस जीवन के प्रति हमें विश्लेषण का रुख नहीं संश्लेषण का रुख लेना पड़ेगा। हमें चीजें तोड़-तोड़ कर नहीं देखनी पड़ेंगी, हमें चीजें जोड़-जोड़ कर देखनी पडेंगी। और जब हम सब चीजों को जोड़ते-जोड़ते अंत में परम जोड़ पर पहुंच जाते हैं, तो वह जो अल्टीमेट टोटल जहां सब जुड़ जाता है जो है, तो उसी परम जोड़ का नाम परमात्मा है। अगर परमात्मा को कोई भी खंड-खंड करके खोजने गया तो नहीं पाएगा, अगर अखंड करने गया तो पा लेगा। सब जोड़ लेगा तो पा लेगा। और यहीं यह बात भी ध्यान रख लेनी जरूरी है कि विज्ञान इसीलिए परमात्मा को नहीं स्पर्श कर पाता है क्योंकि उसकी प्र्रकियाएं एनालिसिस, वह चीजों को तोड़ कर देख रहा है।
पुराने धर्म और नये विज्ञान में फर्क नहीं है। पुराने धर्म और नये विज्ञान में एक बात एक सी है। पुराने धर्म भी चीजों को तोड़-तोड़ कर कहता था, असार है। नया विज्ञान भी चीजों को तोड़-तोड़ कर अणुओं पर पहुंचता है, परमाणुओं पर पहुंचता है, फिर कहता है, कोई आत्मा नहीं मिलती, कोई परमात्मा नही मिलता। नहीं मिलेगा। नहीं मिलेगा इसलिए नहीं कि नहीं है, नहीं मिलेगा इसलिए कि जिस प्रक्रिया से आप चल रहे हैं वह उसे खोजने की नहीं उसे खोने की प्रक्रिया है। किसी भी चीज को तोड़ कर नहीं मिलेगा।
एक सितार है उसे कोई बजा रहा है, उसके तारों से कोई संगीत निकल रहा है, आपके हाथ में दे दिया, आपने कहा कि हम संगीत की खोज करके रहेंगे। सब तार तोड़ डाले, सितार खोल डाला, टुकड़े कर डाले और कहा कि सब देख लिया कहीं कोई संगीत नहीं है। कहां है संगीत? कुछ तार के टुकड़े हैं, कुछ लकड़ी के टुकड़े पड़े हैं। कुछ भी संगीत नहीं है। सब झूठ थी, बात अफवाहें थीं। गलत कहा था लेगों ने कि संगीत भी होता है। संगीत होता है लेकिन सितार तोड़ कर नहीं मिलता, सितार से खुद के प्राण ही जुड़ जाएं तो मिलता है। अकेले सितार में भी नहीं मिलेगा। अकेला सितार भी रखा रहे तो संगीत नहीं मिलेगा। जब एक जीवंत आत्मा उस सितार के तारों से जुड़ जाती है और किसी अनजाने जगत में दोनों का तालमेल और नृत्य होने लगता है, तब संगीत जन्मता है। लेकिन अगर कोई सितार तोड़ कर खोजने जाए--छोड़ो सितार को, सितार मुर्दा है, संगीतज्ञ को ही कोई तोड़ कर देखे, हड्डी-हड्डी भी उसकी काट डाले--पकड़ लें किसी रविशंकर को और ले जाएं लेबोरेटरी में और तोड़ दें, टुकड़े कर दें, और खोपड़ी और शरीर सब काट कर और कहें कि कुछ भी नहीं है, कहां है संगीत? कहां है वीणा? न वीणा में मिला, न वीणावादक में मिला, अफवाहें, झूठी थी बात, दोनों तो खोज लिए? अब तो कुछ खोजने को भी न बचा। फिर भी संगीत था--न वीणा में था, न वीणावादक में था।

दोनों के मेल में था। और दोनों का मेल कुछ बात और है जिसे पकड़ा नहीं जा सकता।
अकेली वीणा संगीत पैदा नहीं करती। अकेला संगीतवादक गीत पैदा नहीं कर पाता। दोनों मिलते हैं किसी मिलन में वहां पैदा हो जाता है। प्रेमी में होता है, प्रेम की प्रेयसी में होता है। दोनों को तोड़ें-फोड़ें कहीं नहीं मिलेगा। दोनों के किसी मिलन में होता है। और उस मिलन को पकड़ने का अब तक तो कोई उपाय नहीं, और भगवान करे कि कभी उपाय न हो। क्योंकि किसी दिन हम प्रेम को पकड़ लें और लेबोरेटरी में चले जाएं तो फिर हम सिंथेटिक प्रेम पैदा कर लेंगे। और पुड़ियां बांधे और बेच दें और दुकानों पर तख्तियां लगा लें कि यहां प्रेम बिकता है। और लोग लेने पहुंच जाएं क्योंकि प्रेम की सबको जरूरत है, किसी के पास नहीं। वे सब पहुंच जाएं कि हमें भी एक पुड़िया चाहिए। अमीर जरा मंहगा प्रेम खरीदेगा और गरीब जरा सस्ता प्रेम खरीदेगा। जो भिखमंगे हैं वे मांगेंगे और जो चोर हैं वे चोरी कर लें। लेकिन फिर दुनिया से प्रेम उठ जाएगा। प्रेम कमोडिटी नहीं बन सकती। क्योंकि प्रेम एक ऐसा अदृश्य मिलन है दो दृश्यों का। दृश्य पकड़ में आ जाते हैं--प्रेमी मिल जाएगा, प्रेमिका मिल जाएगी, लेकिन प्रेम पकड़ में नहीं आता है।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह अदृश्य में घटित होता है। जो गैर-महत्वपूर्ण है उसके माध्यम से प्रकट होता है। पदार्थ है माध्यम परमात्मा के प्रकट होने का, पदार्थ परमात्मा का दुश्मन नहीं है। शरीर है माध्यम आत्मा के प्रकट होने का, शरीर आत्मा का दुश्मन नहीं है। और जो बेचारा माध्यम बना है वह मित्र ही हो सकता है, दुश्मन कैसे हो सकता है? लेकिन इसके लिए चाहिए एक सिंथेटिक एटिट्यूट, एक जोड़ का भाव।
एक छोटी सी कहानी और आज की बात मैं पूरी करूंगा। कहानी मुझे बहुत प्रीतिकर है।
एक बहुत अदभुत आदमी हुआ, मार्क ट्वेन। वह बहुत प्यारा आदमी था। उसका
एक मित्र था, एक उपदेशक, जो निरंतर जगह-जगह बोलता और लाखों लोग उसे सुनने आते। लेकिन मार्क ट्वेन उसे सुनने कभी नहीं गया था। उसने एक दिन मार्क ट्वेन से कहा कि लाखों लोग मुझे सुनने आते हैं, तुम नहीं आए अब तक? पागल हो, चूक रहे हो, अमृत बरस रहा है और तुम नहीं लुट रहे? मार्क ट्वेन ने कहा कि क्या होगा बोलने में, बोलने में सिवाय शब्दों के और कुछ भी न होता है, न हो सकता है? उसने कहाः नहीं, तो फिर तुम आओ शब्दों में क्या रखा है, शब्द तो कहीं मिल जाते हैं, बोलने में कुछ और है।
मार्क ट्वेन गया। सामने बैठा रहा। बोलता था मित्र, सुनता रहा। लेकिन चेहरे पर एक भाव-रेखा न आई। जब मित्र बोल चुका तो उसने पूछा रास्ते में कि आप कुछ बोले नहीं, कैसा लगा? मार्क ट्वेन ने कहाः लगने का क्या था, शब्द ही शब्द थे और कुछ भी न था? एक घंटा मेरा खराब किया। और तुमसे मैं यह भी कह दूं कि रात मैं एक किताब पढ़ रहा था जो कुछ तुम बोले एक-एक शब्द उसमें लिखा है। उसने कहाः पागल हो गए हैं आप? ऐसी किताबें हो सकती है जिसमें मेरे कुछ शब्द हों, लेकिन ऐसी किताब असंभव है जिसमें मेरे सारे शब्द लिखे हों। मार्क ट्वेन ने कहाः तो शर्त बांध लें। सौ डालर की शर्त लग गई। मित्र ने सोचा आज तो मार्क ट्वेन हार जाएगा। लेकिन दूसरे दिन उसने एक डिक्शनरी, एक शब्दकोष भेज दिया। उसने कहा कि इसमें सब एक-एक शब्द लिखे हुए हैं। वह बाजी जीत गया। शब्दकोष में तो सभी शब्द लिखे हुए हैं। उसने एनालिसिस का रास्ता पकड़ा, वाक्य नहीं पकड़े। शब्द पकड़ लिए, अक्षर पकड़ लिए, तो मिल गए।
मैं तो अगर हूं तो उसको कहूं--अब तो वह मर गया मार्क ट्वेन--उसको कहूं
कि तूने इतनी बड़ी डिक्शनरी भेजी, यह भी गलती की, सिर्फ बारहखड़ी भेज देता, तो भी काम चल जाता। उसमें भी सब आ जाता। उसमें भी सब आ जाता क ख ग घ और यह लिख कर भेज देना था एक कागज पर कि इसमें सब आ गया है जो भी आप बोले।
यह विश्लेषक की दृष्टि है। यह नीचे से नीचे खंड को पकड़ लेती है, लेकिन अखंड को भूल जाती है। धर्म है अखंड की ख्ल्लज। उसको खोजने के लिए समन्वय की दृष्टि चाहिए। कल उसकी हम बात करेंगे कि कैसे वह दृष्टि उपलब्ध हो जाए। और जो लोग उस दृष्टि को ही उपलब्धि करने में उत्सुक हों, वे कल सुबह ध्यान

के लिए उपस्थित हो जाएं, ठीक साढ़े आठ बजे, ताकि हम उस अखंड दृष्टि में प्रवेश भी कर सकें।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम दर्शन
तीसरा प्रवचन

प्रेम की अनंतता

मेरे प्रिय आत्मन्!
प्रेम है द्वार, प्रेम है मार्ग और प्रेम ही है प्राप्ति। मनुष्य की भाषा में प्रेम से ज्यादा बहुमूल्य और कोई शब्द नहीं। लेकिन बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं जो प्रेम से परिचित हो पाते हैं। क्योंकि प्रेम की पहली शर्त ही आदमी पूरी नहीं कर पाता। और पहली शर्त पूरी करनी थोड़ी कठिन भी है।
पहली शर्त यह है कि जो आदमी अपने अहंकार को मिटाने को राजी है वही केवल प्रेम को उपलब्ध हो सकता है। और हम अपने अहंकार को ही भरने के लिए जीवनभर लगे रहते हैं। बहुत-बहुत रुपों में अहंकार को भरने की चेष्टा करते हैं। धन से भी, यश से भी, पद से भी, ज्ञान से भी, और यहां तक कि त्याग से भी हम अहंकार को ही भरने की कोशिश करते हैं। जीवन की सारी दिशाओं से हम एक ही काम करते हैं कि मैं अपने मैं को मजबूत कर लें। और मैं से बड़ा कोई झूठ नहीं है। मैं एकदम असत्य बात है। लहर का कोई अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व तो सागर का है। पत्ते का कोई अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व तो वृक्ष का है। और वृक्ष का भी कोई अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व तो पृथ्वी का है। पृथ्वी का भी क्या अस्तित्व है चांद-तारों और सूरज के बिना? असल में अस्तित्व समग्र का है, टोटल का है। अस्तित्व खंड-खंड का नहीं।
क्या मैं जी सकता हूं एक क्षण भी अलग होकर? अभी जो श्वास मेरी है क्षण
भर पहले आपकी रही होगी, अभी जिस श्वास को मैं मेरा कह रहा हूं, मैं मेरा कह भी न पाऊंगा कि वह श्वास मुझसे बाहर हो जाएगी और किसी और की हो जाएगी। मेरे शरीर में जो रक्त है, वह कुछ घड़ी पहले किसी वृक्ष के फल का रस हो सकता है। मेरी जो हड्डी है, वह कुछ समय पहले किसी पत्थर के पास जमा हुआ खनिज होगा। और कल मैं नहीं रहूंगा और ये सब चीजें रहेंगी और अपनी जगह बिखर जाएंगी। मेरे मैं का अलग अस्तित्व कहां है?
दस करोड़ मील दूर है सूरज और ठंडा हो जाए, तो हमें यह भी पता न चलेगा की
वह कब ठंडा हो गया? क्योंकि उसके ठंडे होते ही हम भी ठंडे हो चुके होंगे। पता चलाने को भी कोई पीछे नहीं बचेगा कि सूरज कब ठंडा हुआ। इतिहास में भी यह बात न लिखी जा सकेगी कि सूरज कब ठंडा हुआ। क्योंकि इतिहास लिखने को कोई बचेगा ही नहीं।
दस करोड़ मील दूर जो सूरज है वह भी हमसे इतना जुड़ा है कि उसके बिना हम क्षण भर नहीं हो सकते हैं। हमारा होना सबके होने पर जब इतना निर्भर है तो कैसे हम कहें कि मैं हूं? अपने मैं की अलग घोषणा अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। लेकिन उसी घोषणा पर हमारा सारा जीवन चलता है। हम जो भी करते हैं इसी मैं को ध्यान में रख कर करते हैं। इसलिए इस मैं के असत्य होने के कारण सारा जीवन ही असत्य हो जाता है। और ध्यान रहे, जहां मैं मजबूत है वहां प्रेम असंभव है। क्योंकि प्रेम का मतलब है कि मैं नहीं हूं तू है। प्रेम का अर्थ? प्रेम का अर्थ ही है कि मैं नहीं हूं तू है। और जब पूरे प्राण यह कह पाते हैं कि मैं बिल्कुल नही हूं, तू ही है, तभी प्रभु के द्वार खुलते हैं, अन्यथा नहीं खुलते।
जलालुद्दीन रूमी ने एक छोटा सा गीत लिखा है, मुझे तो गीत अधूरा मालूम पड़ता है, लेकिन फिर भी उसे समझें। रूमी ने लिखा है कि एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर गया है, उसने द्वार खटखटाया, पीछे से पूछा गया है कौन है? तो उस प्रेमी ने कहाः मैं हूं तेरा प्रेमी, द्वार खोल! लेकिन भीतर सन्नाटा हो गया। ऐसा सन्नाटा जैसे घर में कोई है ही नहीं। वह और जोर से दरवाजा पीटने लगा और कहने लगा, चुप क्यों हो गई? द्वार खोल! मैं हूं तेरा प्रेमी। लेकिन फिर कोई उत्तर नहीं। बहुत देर द्वार पीटने पर पीछे से उत्तर आया कि जब तक मैं हूं तब तक तू प्रेमी कैसे हो सकेगा? ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं? अभी तू लौट जा, अभी प्रेम के द्वार खुले इस योग्य तू नहीं हुआ, जब मैं मिट जाए तो आ जाना। मैं हूं प्रेमी ये दोनों बातें एक

साथ संभव नहीं हैं। जब प्रेमी होता है तो मैं मिट जाता है, जब मैं होता है तो प्रेम पैदा ही नहीं हो पाता है।
लौट गया प्रेमी। बहुत वर्ष बीते वापस आया। ऐसा रूमी की कविता में है। वापस लौट आया, द्वार खटखटाए, पीछे से आवाज, फिर वही सवाल, कौन है? और वह कहता है, मैं नहीं हूं, तू ही है। द्वार खुल गए।
अगर मैं इस कविता को लिखूं तो अभी भी द्वार नहीं खोल पाऊंगा। क्योंकि अभी भी वह कह रहा है, मैं नहीं हूं। अभी भी उसे मैं का बोध है। अभी भी वह कह रहा है मैं नहीं हूं, तू है। असल में मैं नहीं हूं यह कहने के लिए भी मेरा होना जरूरी है। नहीं, अभी भी वह पूर्ण हृदय से नहीं कह पाया है कि तू ही है। अभी भी मन पूरा नहीं है। अगर मैं उस गीत को लिखूं तो उसे फिर वापस लौटा दूं। क्योंकि उसका मैं मिटा नहीं। लेकिन रूमी ने गलती की होगी, परमात्मा कभी गलती नहीं करता। उसके दरवाजे पर भूल-चूक नहीं होती। वहां अगर इतना भी मैंने कहा कि मैं नहीं हूं तू ही है, तो भी द्वार बंद ही रहेगा। असल में मैं ही तो द्वार है, अगर मैं गया तो द्वार गया, अगर मैं हूं तो द्वार शेष रह जाएगा।
जब मैं कहता हूं प्रेम ही प्रार्थना है और प्रेम ही परमात्मा है, तो कुछ लोग मुझसे पूछते हैं, परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है? नहीं, परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा व्यक्ति की भांति सोचा गया। और इसलिए भूल हो गई है। परमात्मा व्यक्ति नहीं हैं। पमात्मा शक्ति है, अनुभूति है। और उस शक्ति को अनुभव करने के लिए यह जो "मैं" का पत्थर है यह मेरी छाती से हट जाना चाहिए, अन्यथा उसकी किरणें मेरे हृदय में प्रवेश नहीं कर पाएंगी। यह एक झरना है। एक पत्थर रखा है छाती पर और झरना भीतर है और तड़प रहा है कि प्रकट हो जाए। लेकिन एक पत्थर उसकी छाती पर है और झरना नहीं प्रगट हो पा रहा है। झरने को लाना नहीं है, पत्थर अलग हुआ कि झरना फूट पड़ेगा। झरना था, पत्थर रोक लेता है। कौन सी चीज है जो आदमी के प्रेम को रोके हुए है? और परमात्मा के प्रेम की बात थोड़ी देर को छोड़ भी दें, आदमी-आदमी के बीच के प्रेम को कौन रोके हुए है?
विक्टोरिया साम्राज्ञी हो गई थी। बड़ा शानदार अवसर उसे मिला। वह महारानी हो गई थी। उसका पति सम्राट नहीं था। एक दिन दोनों में कुछ कलह हो गई। उसके पति ने द्वार बंद कर लिए और वह क्रोध में दरवाजे के भीतर बैठ गया। विक्टोरिया गई है और उसने दरवाजा खटखटाया और कहाः द्वार खोलो। उसने पूछाः कौन है? उसने कहाः मैं हूं महारानी विक्टोरिया। तो उसने कहाः द्वार नहीं खुलेंगे। विक्टोरिया को खयाल आ गया, उसने कहा कि नहीं, मैं हूं तुम्हारी विक्टोरिया। द्वार खुल गए। उसने कहाः लेकिन पहले द्वार क्यों नहीं खोले? उसके पति ने कहाः महारानी के अहंकार को प्रेम के दरवाजे पर कोई जगह नहीं। लेकिन हम सब दरवाजों पर अहंकार को लेकर ही खड़े होते हैं। साधारण जीवन में भी प्रेम का द्वार नहीं खुल पाता, क्योंकि मैं को लेकर ही हम वहां मौजूद होते हैं। न कोई पति पत्नी को प्रेम कर पाता है, न कोई मां बेटे को प्रेम कर पाती है, न कोई बेटा बाप को प्रेम कर पाता है, न कोई भाई भाई को प्रेम कर पाता है। क्योंकि सब जगह वह "मैं" मौजूद है। इसलिए हम प्रेम करते हुए दिखाई पड़ते हैं, बात करते हुए दिखाई पड़ते हैं, लेकिन प्रेम नहीं। अगर दुनिया में प्रेम होता तो दुनिया स्वर्ग होती। इस तरह का नरक न होती जैसा दिखाई पड़ती है। पत्नी कहती है मैं पति को प्रेम करती हूं और पति को उस हालत तक पहुंचा देती है कि वह आत्महत्या कर ले या पागल हो जाए। बाप बेटे से कहता है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं और उसकी गर्दन दबाए जाता है, दबाए जाता है। बेटा कहता है बाप को कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं और रोज ताक में रहता है कि इस बूढ़े से कब छुटकारा हो। हम सब प्रेम की बात कर रहे हैं, प्रेम की ही चर्चा चल रही है, जो देखो वही प्रेम कर रहा है। अगर इतने लोग इतना प्रेम कर रहे हैं तो पृथ्वी प्रेम की सुगंध से भर जानी चाहिए। लेकिन ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। पृथ्वी तो घृणा की दुर्गंध से भरी हुई है। ऐसा मालूम होता है कि प्रेम की इतनी चर्चा भी शायद प्रेम नहीं है उसी बात को छिपाने के लिए चलती है। अकसर जो नहीं होता उसकी हम बात करने लगते हैं। कभी उपवास अगर किया हो तो उस दिन भोजन की ही बात चलती है। उपवास करके देखें और पता चलेगा

उस दिन भोजन की ही बात चलती है। दो-चार दिन उपवास करें तो फिर भोजन के सिवाय कोई बात नहीं चलेगी।
हिटलर के एक कनसनट्रेशन कैंप में एक वैज्ञानिक विचारक हैप्टन बी डैक था। उसने अपने संस्मरण लिखे हैं। उसने लिखा है कि मैं हैरान हूं, मैंने कभी भोजन की जिंदगी में चर्चा न की थी। लेकिन जब हम हिटलर के कैंप में बंद कर दिए गए, तो दिन में एक बार रोटी का एक टुकड़ा और काली चाय मिलती थी। अच्छे घरों के लोग जो संगीत की बातें करते थे कभी, अच्छे घरों के लोग जो दर्शनशास्त्र की बातें करते थे कभी, अच्छे घरों के लोग जो कला की बातें करते थे कभी, परमात्मा की बातें करते थे, प्रार्थना की बातें करते थे। सब प्रभागों के भीतर सिवाय रोटी और चाय के दूसरी बात न करते। सिर्फ वही बात चलने लगी। और वह जो रोटी का एक टुकड़ा मिलता उसको भी कोई पूरा नहीं खा लेता था, क्योंकि अगर चौबीस घंटे की भूख, उसको खीसे में थोड़ा-थोड़ा बचा कर रख लेता है। हैप्टन ने लिखाः कई बार निकाल कर हम सिर्फ देख लेते और वापस रख लेते। मन को बड़ी राहत मिल जाती देख कर। और दिन भर बातें करते, जैसे बातों से पेट भर जाएगा। हैप्टन ने लिखा है कि वहां उसे जाकर पता चला कि जिंदगी में जिस चीज की कमी हो जाती है उसी की चर्चा हो जाती है।
असल में जिंदगी में जो चीज होती है उसकी हम चर्चा नहीं करते। परमात्मा पर इतनी किताबें हैं उसका सिर्फ एक कारण है कि जिंदगी में परमात्मा नहीं है। अगर होता, इतनी किताबों की कोई जरूरत नहीं। प्रेम की इतनी चर्चा, इतने गीत, इतनी कथाएं, यह सब प्रेम के न होने के सबूत हैं। कभी खयाल किया है, स्वस्थ आदमी कभी स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता, लेकिन बीमार सुबह से सांझ तक स्वास्थ्य की ही चर्चा करता है। बीमार अक्सर नेचरोपैथी की किताबें पढ़ते हुए मिल जाएंगे--प्राकृतिक चिकित्सा पढ़ रहे हैं, कुछ और पढ़ रहे है, नुस्खे खोज रहे हैं कि स्वास्थय कैसे उपलब्ध हो? और स्वास्थय की परिभाषाएं खोज रहे हैं कि स्वास्थ्य क्या है? कैसे मिल सकता है? लेकिन स्वस्थ आदमी को पता ही नहीं चलता, स्वास्थ्य की बात भी नहीं करता।
कभी आपने खयाल किया सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है, दर्द न हो
तो सिर का पता ही नहीं चलता। पैर में कांटा चुभ जाए तो पैर का पता चलता है, कांटा न चुभे तो पैर का पता ही नहीं चलता। जहां कोई चीज खटक जाती है, कम हो जाती है, चुभने लगती है तो चर्चा शुरू हो जाती है। जहां कोई चीज पूरी होती है, भरी होती है, फुलफिल्ड होती है, वहां कोई बात नहीं होती। प्रेम की इतनी चर्चा है--मां कह रही है बेटे से कि मैं तुझे प्रेम करती हूं। सुबह से सांझ तक पति अपनी पत्नी को समझा रहा है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। जरूर प्रेम नहीं है। कुछ चीज खटक रही है उसे हम बातचीत से पूरी कर लेना चाहते हैं। लेकिन बातचीत से कोई चीज पूरी नहीं होती। और यह जिंदगी में सब तरफ चलता है।
परमात्मा के साथ भी यही हुआ है। इतने मंदिर, इतनी मस्जिद, इतनी किताबें, इतने पंडित, इतने पुरोहित, ये सब जीवन में परमात्मा के अभाव की खबरें देते हैं। कोई चीज खटक रही है तो मंदिर बना लिया है। कोई चीज खटक रही है तो मस्जिद बना ली है। कोई चीज खटक रही है तो किताब पढ़ रहे हैं। कोई चीज कम मालूम पड़ती है--लेकिन न मंदिर पूरा कर सकते हैं, न मस्जिद पूरी कर सकती हैं, न कोई पंडित, न कोई मौलवी, कोई पूरा नहीं कर सकता है। क्योंकि पूरा बातचीत से नहीं हो सकती है बात। जिंदगी बातचीत नहीं है, जिंदगी एक अनुभव है, अनुभव से पूरी हो सकती है।
यह प्रेम हमारे सामान्य जीवन में ही नहीं है तो परमात्मा की तरफ तो उठने का सवाल ही नहीं उठता। जब हमारे सामान्य जीवन में प्रेम ओवरफ्लो होता है, इस बात को ठीक से समझ लें, जब हमारे जीवन में प्रेम इतना बढ़ जाता है कि न पत्नी सम्हाल पाती है, न बेटा सम्हाल पाता है, न मां सम्हाल पाती है, न बाप सम्हाल पाता है, न मित्र सम्हाल पाते हैं, प्रेम इतना ज्यादा हो जाता है और प्रेम को झेलने वाले इतने कम पड़ जाते हैं कि प्रेम की लहरें फैलने लगती हैं, और जब प्रेम को पृथ्वी भी नहीं सम्हाल पाती, और जब प्रेम को चांद-तारे भी नहीं सम्हाल पाते और प्रेम बढ़ता चला जाता है, तो अंततः जो

सम्हाल सकता है प्रेम की अनंतता को वह उपलब्ध हो जाता है। जितना बड़ा हमारा प्रेम उतना बड़ा प्रेम-पात्र मिल जाता है।
लेकिन छोटा ही प्रेम नहीं है, बड़े का तो सवाल ही नहीं। छोटे से शुरू होना चाहिए। और अब तक की मनुष्य की संस्कृति ने एक उलटा खयाल ले लिया है। उसका खयाल है कि छोटे-छोटे प्रेम तोड़ दो, तब तुम परमात्मा को प्रेम कर सकते हो। साधु-संन्यासी बहुत जहरीली बात हजारों साल से आदमी को समझा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि पत्नी को प्रेम छोड़ दो अगर परमात्मा को प्रेम करना है। वे यह कह रहे हैं, बूंद-बूंद प्रेम मत करो अगर सागर को प्रेम करना है। लेकिन यह पता नहीं कि सागर बूंद-बूंद के जोड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। दुनिया की सबसे बड़ी नदी है, अमेजान। लेकिन अमेजान जहां से निकलती है वहां देख कर बड़ा चमत्कार मालूम पड़ता है। सारी दुनिया के साधु-संन्यासियों को--जिंदा को, मुर्दा को--सबको अमेजान के मूलस्रोत पर खड़ा कर देना चाहिए। जहां से अमेजान निकलती है वहां सिर्फ एक-एक बूंद टपकती है। बीस सेकेंड में एक बूंद टपकती है। बीस सेकेंड में एक बूंद गिरती है, फिर बीस सेकेंड तक बूंद का पता नहीं, फिर एक बूंद गिरती है। और उस एक-एक बूंद, बीस-बीस सेकेंड में गिरने वाली बूंद से दुनिया की आज सबसे बड़ी नदी बनती है--अमेजान। उससे बड़ी कोई नदी नहीं। अगर साधु-संन्यासी होते तो वे कहते कि ये बूंद-बूंद से नदी बनी है, बंद करो ये बूंद-बूंद, हमें तो नदी चाहिए। बूंद-बूंद तो बंद हो जाती, लेकिन नदी भी बंद हो जाती है। और नदी के साथ जो प्रेम पत्नी की तरफ है उसको तोड़ कर परमात्मा की तरफ कोई न जा सकता है, न गया है। वह तो पत्नी की तरफ जो बूंद-बूंद है वह जब नदी की तरह हो जाए तो परमात्मा की तरफ जाया जा सकता है। पत्नी की तरफ जो प्रेम है और बड़ा हो जाए, बेटे की तरफ जो प्रेम है वह और बड़ा हो जाए, बाप की तरफ जो प्रेम है वह और बड़ा हो जाए, वह बढ़ता जाए, बढ़ता जाए, और वह इतना हो जाए कि बाप उसे सम्हाल न सके, मां उसे सम्हाल न सके, पत्नी उसे सम्हाल न सके। फिर वह प्रेम और फैलने लगे और फैलने लगे और फैलता चला जाए। जिस दिन प्रेम सब सीमाओं के पार फैल जाता है, असीम हो जाता है, उस दिन वह परमात्मा का द्वार बन जाता है।
लेकिन हम सोचते हैं सब तरफ से प्रेम को रोक लें फिर परमात्मा को प्रेम करें। यह असंभव है। और इस रोकने में परमात्मा तक हम नहीं जाते--वह दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है--जब कोई व्यक्ति प्रेम रोकता है तो अहंकार बढ़ता है। ध्यान रहे, सिर्फ प्रेम ता.ेडता है अहंकार को। जब एक व्यक्ति अपनी मां को प्रेम करता है, तो मां के पास अहंकारी नहीं रह जाता। इसलिए मां के पास जो राहत मिलती है वह किसी के पास नहीं है। मां की गोद में वह सिर रख कर लेट जाता है, हो सकता है जिंदगी में बड़ा सेनापति हो, हो सकता है जिंदगी में बड़ी इज्जत, हजारों-लाखों लोग फूलमालाएं पहनाते हों, लेकिन मां के चरणों में सिर रख कर लेट जाता है, वहां कोई अहंकार नहीं और मां की गोद इतनी शांति देती है। वह मां की गोद की शांति नहीं है, ध्यान रहे, मां कि गोद भी क्या शांति दे सकती है, वह शांति है अहंकार के न होने की। उन क्षणों में वह अहंकार में नहीं है, अकड़ा हुआ नहीं है। मां के सामने अहंकार नहीं रखा है तो शांति मिल रही है।
एक व्यक्ति अपनी प्रेयसी के पास होता है, तो सब अहंकार भूल जाता है।
तो उतनी देर एक आनंद का अनुभव होता है। जितना हम प्र्रेम करते हैं उतना अहंकार टूटता है। जितना हम अहंकार तोड़ते हैं उतना प्रेम बढ़ता है। लेकिन अगर किसी ने सब तरफ से प्रेम के द्वार बंद कर दिए, तो आप बूंद-बूंद प्रेम इनकार है। सब तरफ से बंद कर दिए द्वार, तो उस आदमी का अहंकार मजबूत हो जाएगा।
इसलिए संन्यासियों से ज्यादा अहंकारी आदमी खोजने मुश्किल हैं। उनके पास सिर्फ अहंकार रह जाता है--मजबूत, कठोर पत्थर की तरह, क्योंकि सब तरफ से प्रेम तोड़ लिया गया है। लेकिन संन्यासी के भीतर हम जाएं तो ब्रह्म को पाना बहुत मुश्किल है। अहंकार की सख्त, मजबूत, फ्रोजन, पत्थर की प्रतिमा वहां मिलेगी। हां, लेकिन वह भी कह सकता है, अहं-ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। कह सकता है। एक यह अहंकार की घोषणा भी हो सकती है कि मैं ब्रह्म हूं। जिसे यह अनुभव हुआ होगा कि मैं ब्रह्म हूं उसे साथ में यह भी अनुभव हुआ होगा कि मैं

नहीं हूं, तभी जो है वह ब्रह्म है। अच्छा हो कि हम कहें कि मैं ब्रह्म हूं, इसकी जगह हम कहें जब मैं नहीं हूं तभी ब्रह्म है।
संन्यासी अहंकार से भर जाता है प्रेम को तोड़ कर, त्यागी अहंकार से भर जाते हैं प्रेम को तोड़ कर। इधर हमने प्रेम तोड़ा उधर अहंकार बढ़ा। और मैं कहता हूंः अहंकार है तो परमात्मा के द्वार पर प्रवेश नहीं। तो हम जितना प्रेम कर सकें। लेकिन हजारों साल से सिखाया गया है, नश्वर को प्रेम मत करना, नाशवान को प्रेम मत करना, मिटने वाले को प्रेम मत करना। सुबह फूल खिलता है सांझ मुरझा जाता है। पुरानी शिक्षाएं कहती हैं, फूल को प्रेम मत करना, क्योंकि यह तो सुबह खिलता है सांझ मुरझा जाता है। वे कहते हैं, ऐसे फूल को प्रेम करना जो कभी न मुरझाता हो। पत्थर का फूल बनाना पड़ेगा। लेकिन पत्थर का फूल फूल हो सकता है? हां, कभी न मुरझाएगा यह तो पक्का है, क्योंकि कभी वह खिला ही नहीं। जो खिलेगा वह मुरझाएगा। जो नहीं खिला है वह नहीं मुरझाएगा। क्योंकि वह खिला ही नहीं इसलिए कभी मुरझाएगा नहीं। लेकिन पत्थर का फूल फूल होता है? असल में फूल के फूल होने में उसका मुरझा जाना भी रस लाता है। वह मुरझाता है इसीलिए जीवित है। वह मर जाएगा सांझ इसीलिए जिंदा है। वह सुबह पैदा हुआ है इसीलिए सांझ मरेगा। लेकिन हमने कहा नाशवान को प्रेम मत करना। और इस जगत में जो भी दिखाई पड़ता है सब नाशवान है। इस जगत में क्या है जो अविनाशी है, दिखाई तो नहीं पड़ता। सब नाशवान दिखाई पड़ता है। राम भी नाशवान हैं, और कृष्ण भी, और बुद्ध भी, और महावीर भी। नाशवान क्या नहीं है? सुबह फूल खिलता है। अस्सी साल पहले भी बुद्ध खिलते हैं और अस्सी साल बाद मुरझा जाते हैं। इस जगत में क्या है जो नाशवान नहीं है? इस जगत में सभी तो नाशवान मालूम पड़ता है। लेकिन शिक्षाएं कहती हैं नाशवान को प्रेम मत करना, अविनाशी को प्रेम करना। अविनाशी कहां है, वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता? वह कहीं मिलता नहीं, उससे कहीं मुलाकात नहीं होती। तो नाशवान से प्रेम मत करना यह तो हो जाता है, लेकिन वह अविनाशी मिलता नहीं है, और इसलिए फिर प्रेम के होने का उपाय बंद हो जाता है।
मैं यह कहना चाहता हूं कि नाशवान को प्रेम करना। और जब कोई नाशवान को प्रेम करता है तो नाशवान अविनाशी हो जाता है। जैसे ही कोई नाशवान को प्रेम की दृष्टि से देखता है तो फिर अविनाशी हो जाता है। असल में सब तरफ अविनाशी है। अगर हमारे पास प्रेम की आंख हो तो फिर कुछ भी नाशवान नहीं। क्योंकि जब फूल कुम्हलाता है तब भी हम जानते हैं कि वही फूल कहीं और खिलना शुरू हो गया होगा। प्रेम की आंख विदा करना जानती ही नहीं। प्रेम की आंख ने कभी किसी को विदा ही नहीं किया है।
रामकृष्ण की मृत्यु हुई। मृत्यु के पहले उनकी पत्नी शारदा बहुत दुखी थी, चिंतित थी। क्योंकि पता हो गया था कि मृत्यु आ रही है। और पता भी बहुत अदभुत ढंग से हुआ। रामकृष्ण को भोजन में बड़ा रस था। इतना रस था कि वे बीच-बीच में ब्रह्मचर्चा छोड़ कर और चौके में पहुंच कर पता लगा आते थे कि क्या बन रहा है? सबको तकलीफ होती थी। शिष्यों को बड़ा दुख होता था कि कैसे संत हो? और लोग क्या कहेंगे? यह एक गलती और छोड़ दें कोई कमी नहीं। शारदा उनकी पत्नी थी कहती थी कि मुझे भी बड़ा संकोच लगता है कि आप ऐसा पूछने चले आते हैं। ब्रह्मज्ञानी, को यह क्या है? और रामकृष्ण हंसते थे। लेकिन एक दिन शारदा ने कहा कि नहीं, अच्छा नहीं मालूम होता कि गांव मे यह चर्चा होती है कि रामकृष्ण भी कोई संत हैं? तो रामकृष्ण ने कहाः तुझे पता नहीं मेरी नौका के सब तार किनारे से छूट गए हैं, एक तार मैंने किसी तरह बांध कर रखा है कि किनारे रुका रहूं, और जिस दिन मैं भोजन की तरफ अरुचि दिखाऊं तो जान लेना कि बस तीन दिन और नौका नदी के तट पर, फिर छूट जाएगी।
एक दिन शारदा लेकर आई है उनके मरने के तीन दिन पहले थाली, वे लेटे थे,
वे तो लेटे नहीं रह जाते थे, थाली कोई ले आए तो उठ कर खड़े हो जाते थे, उन्होंने करवट बदल ली, उस तरफ पीठ कर ली। तो शारदा को याद आया, हाथ से थाली छूट कर गिर गई और वह रोने लगी। और रामकृष्ण ने कहाः रो मत, क्योंकि सदा तुमने समझाया है, अब मैं पक्का संत हो गया, अब रो मत, लेकिन बस तीन दिन और। तो वे तीन दिन बड़े कठिनाई के थे। आदमी अचानक मर जाता है तो भी ठीक है, पीछे हम रो लेते हैं, लेकिन मरने का पता चल जाए। तो शारदा बार-बार उनसे कहती कि

तुम मर जाओगे, तो वे कहते, कि तुमने मुझे प्रेम किया है, अगर प्रेम किया है तो नहीं मरूंगा। पर वह कहती कि मेरे प्रेम करने से क्या फर्क पड़ेगा? और वे कहते कि अगर तूने प्रेम किया है तो नहीं मरूंगा। और यही हुआ, रामकृष्ण मर गए। जिन्होंने उन्हें प्रेम नहीं किया था उन्होंने देखा कि वे मर गए। क्योंकि प्रेम जिसके पास नहीं है वह शरीर से गहरे नहीं देख पाता। शरीर ही दिखाई पड़ता है आंखों से तो, प्रेम की आंख से और भीतर जो है वह दिखाई पड़ने लगता है। शरीर तो नाशवान है। भीतर कुछ है, लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता। प्रेम उसको पकड़ लेता है वह जो भीतर है। रोना-पीटना मच गया, लोग आ गए। शारदा से कहने लगे चूड़ियां तोड़ो, पर शारदा ने कहा कि वे तो मरे नहीं। हिंदुस्तान में पहली विधवा है शारदा जिसने चूड़ियां तोड़ने से इंकार कर दिया। चूड़ियां जिंदगी भर नहीं तोड़ीं। माथे का टीका नहीं पोंछा उसने। लोग समझे कि पागल हो गई। असल में प्रेम करने वाले को पागल ही लोग समझते हैं। लोग समझे की पागल हो गई है। सदमें में पागल हो गई, लेकिन उसकी आंख में आंसू न आया। और रोज रात वह जहां रामकृष्ण सोते वहां बिस्तर कर देती और कहती कि परमहंस प्रकाश बुझा दूं। लोग समझे कि बिल्कुल अब तो पागल हो गई। खाने के वक्त कहती कि चलें भोजन तैयार हो गया। आज बीच में आए नहीं देखने। लोग समझे कि पागल हो गई।
लेकिन प्रेमी सदा से पागल रहा है। तय करना मुश्किल है अभी कि प्रेमी पागल होते हैं कि वे जो प्रेमियों को पागल समझते हैं वे पागल होते हैं। असल में गैर-प्रेमियों की संख्या इतनी ज्यादा है कि अभी तय करना बहुत मुश्किल है। लेकिन पृथ्वी पर अगर प्रेमियों की संख्या बढ़ जाएगी तो जो प्रेम नहीं कर पाएगा उसे हम पागल समझेंगे। वह पागल है। क्योंकि जो प्रेम नहीं कर पाता वह अहंकार में जीता है। और अहंकार में जो जीता है वह विक्षिप्त हो जाता है, पागल हो जाता है।
यह मैं यह कह रहा हूं कि नाशवान को प्रेम मत करना यह शिक्षा हमें परमात्मा तक जाने में बाधा डालती है। क्योंकि नाशवान ही चारों तरफ दिखाई पड़ता है। अविनाशी तो दिखाई नहीं पड़ता। वह उसे दिखाई पड़ेगा जो नाशवान को प्रेम करेगा, जो उसमें गहरे उतर जाएगा, उसे अविनाशी दिखाई पड़ जाएगा। अविनाशी को देखने का रास्ता ही जो है उसे प्रेम करना है। लेकिन हमने जो तरकीब जुटाई वह यह थी कि विनाशी को प्रेम मत करो, नाशवान को प्रेम मत करो, नश्वर को प्रेम मत करो, क्षणभंगुर को प्रेम मत करो।
आज दोपहर ही कोई मुझसे पूछ रहा था, तो मैंने उससे एक घटना कही। जापान में एक फकीर हुआ, रिंझाई। उसका गुरु मर गया है। और वह रिंझाई बहुत प्रसिद्ध फकीर था, लाखों लोग उसे पूजते थे। उसके गुरु की भी इज्जत रिंझाई के कारण ही थी। जब गुरु मरा तो लाखों लोग आए। और रिंझाई को देखा तो वह छाती पीट-पीट कररो रहा और बेहाल हुए जा रहा है, आंसू बहे जा रहे हैं। तो मित्रों ने कहा यह क्या करते हो, रोते हो, लोग क्या कहेंगे? लोग आ गए हैं, बंद करो रोना। हम तो तुम्हें ब्रह्मज्ञानी समझते हैं और ब्रह्मज्ञानी रोए तो लोगों पर क्या असर पड़ेगा? और तुम्हीं तो समझाते थे कि आत्मा अमर है। अब रोते क्यों हो? जब आत्मा अमर है तो रो क्यों रहे हो? गुरु मरे तो नहीं। तो रिंझाई हंसने लगा। आंख से आंसू भी बहते रहे और उसे हंसी भी आ गई। वह बहुत हंसने लगा, उसने कहाः नहीं, जो आत्मा अमर है उसके लिए नहीं रो रहा हूं, लेकिन वह जो शरीर मर गया है वह भी बहुत प्यारा था, उसके लिए रो रहा हूं। और इसलिए भी रो रहा हूं कि इस प्यारे शरीर के कारण ही वह आत्मा इस पृथ्वी पर उतर सकी थी। यह वाहन था, माध्यम था, द्वार था, यह शरीर द्वार था जहां से हमने उस अमृत को झांका। खिड़की थी, यह विंडो थी। आज वह पीछे का यात्री तो चला गया है और यह कीर्ति, यह द्वार भी टूट कर गिर पड़ा है, मैं इस द्वार के लिए रो रहा हूं। क्योंकि इस द्वार के बिना हम उस अमृत आत्मा को देख भी कैसे पाते। तो क्या इतना भी धन्यवाद न दूं? और फिर वह कहने लगाः अगर लोग मुझे अज्ञानी समझते हों तो क्या वे मुझे ज्ञानी समझें इसलिए मैं अपने आंसुओं को रोक लूं?
असल में बहुत से ज्ञानी इसी तरह ज्ञानी बने हुए हैं कि लोग क्या समझते हैं इस पर वे ज्ञानी बने हुए हैं। लोगों की समझ उनके ज्ञान को तय कर रही

है। अगर लोग समझते हैं कि मुंह पर पट्टी बांधना ज्ञान है, तो बेचारे मुंह पर पट्टी बांधे बैठे हुए हैं। और कई मुंह पर पट्टी बांधे लोग मुझे मिलते हैं, उनसे मैं पूछता हूं कि यह क्या पागलपन है? वे कहते हैं कि अगर हम इसे अलग कर दें तो लोग हमें साधु ही न समझें। साधुओं के भी लेबल, डेफिनेशंस! कोई गेरुआ वस्त्र इसलिए पहने हुए है कि गेरुआ वस्त्र न पहने तो लोग साधु ही न समझें। कोई इसलिए यह कर रहा है, कोई इसलिए वह कर रहा है कि ऐसा न करें तो लोग कहीं यह न समझें। लेकिन ध्यान रहे, कि जो आदमी लोगों पर नजर रखे हुए है कि लोगों की समझ से तय होगा कि मैं साधु हूं, वह आदमी साधु नहीं है। क्योंकि जो साधु है, वह है, लोगों की समझ से संबंध नहीं है इस बात का कि लोग क्या समझेंगे। लोगों की नजर को देख कर जो अपना व्यवहार कर रहा है वह किसी नाटक में लगा हो सकता है, अभिनय में, लेकिन साधु नहीं। ये जो शिक्षाएं हमें दी गई हैं, उन शिक्षाओं ने हमें जड़ किया है, पाखंडी, हिपोक्रेट बनाया है, लेकिन प्रेमी नहीं बना पाई। नाशवान को प्रेम करना पड़ेगा ताकि अविनाशी की खोज हो सके।
तो जब मैं कहता हूं कि प्रेम है परमात्मा, तो मैं यह कहता हूं कि प्रेम
है द्वार जिससे हम जान पाएंगे परमात्मा को। लेकिन किसको प्रेम करें? कुछ लोग हैं वे कहते हैं मनुष्यता को प्रेम करते हैं। मनुष्यता को प्रेम करने वाले लोग बहुत बेईमान हैं। बेईमान इसलिए कि मनुष्य को प्रेम नहीं करते वे मनुष्यता को प्रेम करते हैं। मनुष्यता कहीं है नहीं। मनुष्यता को कहीं खोजा नहीं गया आज तक, कहीं जाए खोजने तो कहीं मिलेगी ही नहीं, जब भी मिलेगा मनुष्य मिलेगा, जहां भी मिलेगा मनुष्य मिलेगा, ठोस, बेहाल। मुनष्यता तो कहीं भी न मिलेगी।
तो जिन लोगों को प्रेम से बचना है उनकी बहुत बढ़िया तरकीब यह है कि वे कहें, हम तो मनुष्यता को प्रेम करते हैं। मनुष्य को हम प्रेम नहीं करते, हम मनुष्यता को प्रेम करते हैं। जिन लोगों को प्रेम से बचना है, तो वे कहते हैं, हम प्रकृति से प्रेम नहीं करते, हम तो परमात्मा से प्रेम करते हैं। लेकिन जहां भी जाओ मिलेगी प्रकृति, परमात्मा नहीं। चाहे हिमालय पर जाओ और चाहे तिब्बत जाओ और चाहे कहीं जंगल और तीर्थ जाओ मिलेगी प्रकृति, परमात्मा नहीं। जो मिलती है वह सदा प्रकृति है। जो मिलता है वह सदा मनुष्य है। लेकिन हमने एब्स्ट्रेक्ट हवाई बातें निकाल ली हैं जो कहीं भी नहीं हैं और उनको हम प्रेम कर रहे हैं।
इसका यह परिणाम हुआ है कि एक आदमी मंदिर भागा चला जा रहा है हाथ में थाली लिए हुए भगवान को प्रसाद लगाने जा रहा है और बगल में एक भगवान भूखा मर रहा है, वह उसकी तरफ देखता भी नहीं, वह भागा चला जा रहा है, वह भगवान को प्रेम करता है। यह तो आदमी था नाशवान, यह तो मर ही जाएगा, वह तो पत्थर की मूर्ति को प्रेम करता है जो कभी नहीं मरती, उसको भोग लगाने जा रहा है। अगर दुनिया कभी समझदार होगी तो इन सबकी गिनती पागलों में नहीं तो किनमें होगी कि जो पत्थर की मूर्ति को भोजन दिए चले जा रहे हैं और एक जिंदा आदमी मर रहा है।
एकनाथ लौटते थे रामेश्वरम की तरफ, और कुछ उनके साथ थे, वे तीर्थयात्रा
को गए थे, एकनाथ भी गए थे। लौट रहे हैं काशी से पानी लेकर रामेश्वरम के भगवान को चढ़ाने। एक वन, एक मरुस्थल, लंबी यात्रा है, और एक गहरे सूखे मरुस्थल में जहां दोपहर सूरज तप रहा है और रेत ही रेत है कहीं पानी नहीं है, एक प्यासा गधा तड़प रहा है। अब गधा जो है वह बिल्कुल गैर-आध्यात्मिक प्राणी मालूम पड़ता है। गधे को कौन स्प्रिचुअल माने? गधे को कौन आध्यात्मिक मान सकता है? आदमी को ही नहीं मानते लोग तो गधे को कौन मानेगा? वह तड़फता रहा। पानी सबके पास है। गंगा का जल सबके पास है। लेकिन वे जा रहे हैं रामेश्वरम के पत्थर पर पानी चढ़ाने। वे सब मुंह फेर लेते हैं उस गधे को मरते देख कर; लेकिन एकनाथ रुक जाते हैं और अपने कमंडल से पानी उस गधे को पिलाने लगते हैं। सारे लोग चिल्लाते हैं कि यह क्या कर रहे हो, पाप, जो पानी भगवान के लिए लाए हो वह गधे को पिला रहे हो? एकनाथ कहते हैं कि भगवान यहां प्यासा तड़प रहा हो, तो मेरा तीर्थ तो पूरा हो गया, मैं वापस लौट जाता हूं। मेरी प्रार्थना तो सुन ली गई। वह जो रामेश्वरम में बैठा है वह यहीं आ

गया है। और वे कहते हैं कि पागल तो नहीं हो गए हो, एक गधे को भगवान कह रहा हो? वे एकनाथ को भी समझा गए कि यह भ्रष्ट हुआ, पागल हुआ। अपनी तीर्थ यात्रा पर निकल गए।
भगवान को प्रेम करने वाला आदमी को कैसे प्रेम करे? आदमियत को प्रेम करने वाला आदमी को कैसे प्रेम करे? अविनाशी को प्रेम करने वाला नाशवान को कैसे प्रेम करे? परमात्मा को प्रेम करने वाला प्रकृति को कैसे प्रेम करे? नहीं, सौंदर्य को प्रेम करने वाला फूल को कैसे प्रेम करे? वह तो कहता है हम सौंदर्य को प्रेम करते हैं हालांकि सौंदर्य कहीं नहीं मिलता। कहीं कोई चेहरा मिलता है, कहीं कोई फूल मिलता है, कहीं कोई आंखें मिलती हैं, सौंदर्य कहीं नहीं मिलता। अब तक तो नहीं मिला। आदमी हजारों साल से खोज रहा है सौंदर्य तो कहीं नहीं मिला; जब भी मिलता है सुंदर मिलता है, सौंदर्य नहीं मिलता। लेकिन सौंदर्य को प्रेम करने वाले लोग, तो वे कहते हैं कि आदमी को क्या प्रेम कर रहे हो, सौंदर्य को प्रेम करो। फूल को क्या प्रेम कर रहे हो, सौंदर्य को प्रेम करो। उनकी लफ्फाजी, उनकी फरेबबाजी आदमी को बहुत दिन से परेशान किए हुए है। नहीं, सुंदर को प्रेम करना पड़ेगा। और अगर सुंदर को प्रेम किया जाता है तो सौंदर्य मिल जाता है। प्रेम करना पड़ेगा पदार्थ को, प्रकृति को, वह जो है चारों तरफ उसको। जब उसको प्रेम किया जाता है तो उसमें जो छिपा है वह मिल जाता है।
लेकिन हमने एक आकाश में भगवान बिठा रखा है। अब जरा मुश्किल पड़ेगी उस आकाश के भगवान को, क्योंकि ये आर्मस्ट्रांग और उनके साथी मानते ही नहीं। वे आकाश में खोजने यात्रा पर निकल पड़े हैं। पहले हिमालय पर रहता था, और पहले बिल्कुल छोटी-छोटी पहाड़ियों पर रहता था, लेकिन आज वह पहाड़ियों पर चढ़ गया, उसने कहा कि कहां है तुम्हारा भगवान? तब भगवान का डेरा हमें हटाना पड़ा और ऊपर रख दिया हिमालय पर। जब आदमी हिमालय पर भी चला गया, फिर हमने उसे ऐसे तख्त पर रखा हुआ है कि जहां चढ़ने की मनाही कर दी थी। लेकिन वहां भी आदमी भी चढ़ गया। तो वह कहीं मिला नहीं। फिर उसको चांद-तारों पर बैठा दिया। अब बड़ी मुश्किल में है भगवान। अब चांद-तारों पर आदमी पहुंचा जा रहा है। वहां भी नहीं पाएगा। फिर क्या होगा? नहीं, यह भगवान नहीं है मुसीबत में, यह हमारा भगवान मुसीबत में है, झूठा है जो हमने कल्पित किया हुआ है। भगवान तो यहीं सब तरफ मौजूद है, उसे चांद-तारों और एवरेस्ट की चोटी पर रखने की जरूरत नहीं।
मैंने सुनी है एक कहानी कि जब भगवान ने सारी दुनिया बनाई और आदमी बनाया, तो आदमी को बना कर वह बड़ी मुसीबत में पड़ गया। पड़ ही गया होगा। आदमी को देख कर भरोसा आता है कि कहानी सच्ची होनी चाहिए। क्योंकि जब तक आदमी नहीं बनाया था तब तक तो सब ठीक था, आदमी बनाया तो मुसीबत शुरू हो गई। कभी आदमी घिराव कर देता, कभी हड़ताल कर देता, कभी सत्याग्रह की धमकी दे देता, कभी कुछ करता, कभी कुछ करता। भगवान ने देवताओं को बुलाया और उनसे कहा कि एक प्रार्थना है, कोई तरकीब निकालो, मैं आदमी से बचना चाहता हूं। यह आदमी तो मुझे मुश्किल में डाल देगा। यह तो चौबीस घंटे, शिकायतों का हिसाब नहीं, अंत ही नहीं शिकायतों का। और मैं एक की शिकायत पूरी करूं तो पचास की शिकायत खड़ी हो जाती है। यह तो बहुत मुश्किल है, यह कैसे होगा? मुझे बचाओ, मैं कहां छिप जाऊं?
किसी ने कहा एवरेस्ट पर छिप जाएं, गौरीशंकर पर चले जाएं। भगवान ने कहा
कि तुम्हें पता नहीं बहुत जल्दी एक आदमी होगा तेनजिंग, हिलेरी, वे चढ़ जाएंगे ऊपर, फिर क्या होगा? और ज्यादा देर नहीं है, बहुत ही कम समय है, वे जल्दी ही चढ़ जाएंगे। तो किसी ने कहा चांद पर चले जाओ। तो उसने कहाः तुम्हें पता नहीं है कि आर्मस्ट्रांग वहां पहुंचने की तैयारी कर रहा है। बहुत तरकीबें बताईं, लेकिन उसने कहा कि आदमी सब जगह पहुंच जाएगा। तो फिर एक बूढ़े आदमी ने, एक बूढ़े देवता ने उसके कान में कहा, कि तुम एक काम करो, आदमी में ही छिप जाओ। और भगवान ने कहाः ठीक! यह बात जंचती है, वहां आदमी कभी नहीं पहुंचेगा। वह वहीं छिप गया, वह वहीं बैठा हुआ है छिप कर। वह सबमें छिप गया है। अलग जगह खोजता तो पकड़ में आ जाता, वह सबमें छिप गया है, जैसे नमक पानी में छिपा है सागर के। तो कहीं से भी चखें, वह सागर का पानी नमकीन है।

ऐसे ही परमात्मा छिपा है सबमें। कहीं से भी प्रेम करें, कहीं से भी चखें, सब जगह मिल जाता है। लेकिन प्रेम उसके चखने का रास्ता है। कहीं से तो शुरू करें।
लेकिन नाशवान, नाशवान सब तरफ घिरा है, शुरू कैसे करें? ऐसी है हमारी हालत जैसे कोई आदमी हमसे कह दे कि लहरों को कभी प्रेम मत करना सागर को प्रेम करना। और लहर ही लहर दिखाई पड़ती हैं, सागर दिखाई नहीं पड़ता, हम मुश्किल में पड़ जाएं, हम दिक्कत में पड़ जाएं, हम लहर को प्रेम न करें और सागर को प्रेम करें, वह सागर दिखता नहीं लहर ही लहर दिखाई पड़ती है। हां, कोई लहर को प्रेम करे और लहर में डूब जाए तो सागर में पहुंच जाता है। लेकिन उसके लिए तो डूबना पड़ेगा। और लहर के अतिरिक्त डूबने का कोई रास्ता नहीं है। लहर से मिलना ही पड़ेगा।
जब मैं कहता हूंः प्रेम, तो मेरा मतलब प्रेम किसी हवाई कल्पना से नहीं है; मेरा मतलब है, प्रेम हमारे सामने जो भी मौजूद है उससे। लेकिन कैसे हम प्रेम करें? पहली शर्त और सबसे बड़ी शर्त यह है कि हमें मिटना पड़े जब भी हम प्रेम करने जाएं, हमें अपने को खोना पड़े।
जीसस का एक वचन है बहुत अदभुत। जीसस ने कहा हैः जो अपने को बचाएगा वह मिट जाएगा। और जो अपने को मिटा देता है वह अपने को बचा लेता है। उलटी बात लगती है। कहते हैं, जो अपने को मिटाएगा वह बच जाएगा और जो अपने को बचाएगा वह मिट जाएगा। वे ठीक कहते हैं, अगर मैंने अपने मैं को बचाया तो मैं मिटा, क्योंकि मैं एक झूठ है, उसके साथ बचना नहीं आ सकता। और अगर मैंने अपने मैं को बिखेर दिया, नहीं बचाया, तो मैं बच जाऊंगा, क्योंकि मैं के अलावा मेरे भीतर मिटने वाली और कोई भी चीज नहीं है जो मिट जाए। पर इस मैं को हम कैसे मिटाएं? असल में मिटाने की भाषा भी खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि हम अगर मैं को मिटाने जाएं तो भी मन में यह होता है कि मैं मिटा रहा हूं, तो वह मजबूत होता है।
एक आदमी हमारे पास आता है और कहता है कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके पैर की धूल हूं, लेकिन जरा उसकी आंखों में देखें, जब वह कह रहा है मैं कुछ भी नहीं हूं, तब भी वह कह रहा है कि मैं कुछ हूं। जब एक आदमी कहता है कि मैं बिल्कुल विनम्र हूं, मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं, तब जरा उसके चेहरे की रौनक को देखें, तो वह यह कह रहा है कि अपने से आगे कोई भी नहीं, इस मामले में सबसे आगे मैं ही हूं। अगर उसको कह दें कि तुमसे भी ज्यादा विनम्र आदमी गांव में आ गया है, तो वह जरा दुखी हो जाता है। और वह पता लगा कर आता है, गलत कहते थे आप, मैंने उस आदमी का पता लगाया वह इतना विनम्र नहीं है जितना मैं हूं।
अगर हम मैं को मिटाने में भी लगें तो भी मैं मजबूत हो जाता है। तो मैं
को मिटाने में नहीं लगा जा सकता। असल बात यह है कि जो नहीं है उसे मिटाएंगे कैसे?
अगर हम अंधेरे को मिटाने में लग जाएं तो कभी न मिटा पाएंगे। अंधेरा है
ही नहीं, मिटाएंगे कैसे? अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। अंधेरे के साथ कुछ करना हो, तो रोशनी के साथ कुछ करना पड़ता है। हमें वही उलटा रास्ता चुनना पड़ता है। अगर अंधेरे को मिटाना है तो दीये को जलाओ। अगर अंधेरे को लाना है तो दीये को बुझाओ। अंधेरे के साथ सीधा कुछ किया ही नहीं जा सकता। नहीं तो आप, किसी से दुश्मनी हो जाए तो सब मित्र मिल कर और उसके घर में अंधेरा डाल आएं तो नहीं होगा। अंधेरा नहीं डाल सकते किसी के घर में। और यहां अंधेरा हो जाए और हम सारे लोग ताकत लगाएं तो भी अंधेरा इस पंडाल के बाहर निकाल नहीं सकते। और उससे यह भ्रम भी पैदा हो सकता है, देखिए तर्क कैसे भ्रम पैदा कर देता है, उससे यह भी भ्रम पैदा हो सकता है कि अंधेरा बहुत ताकतवर है। हम लोग पूरी ताकत लगा रहे हैं और वह नहीं निकलता। ठीक ही लगता है तर्क की भाषा में। अंधेरा ताकतवर है क्योंकि हम इतनी ताकत लगा रहे हैं फिर भी नहीं निकलता। लेकिन अंधेरा ताकतवर नहीं है, असल में अंधेरा है ही नहीं, इसलिए कितनी भी ताकत लगाएं वह नहीं निकलेगा। जो नहीं है उसे निकाला नहीं जा सकता।

अभाव को मिटाना असंभव है। जो है उसे निकाला भी जा सकता है, जो नहीं है उसे कैसे निकालिएगा? अहंकार को इसलिए जो लोग निकालने में लग जाते हैं, सुन कर, समझ कर कि अहंकार बाधा है, तो उठा कर अहंकार को मिटा कर रहेंगे। और जब वे कहते हैं, मिटा कर रहेंगे, तब भी अहंकार पीछे हंसता है, वह कहता है, ठीक है, मिटाओ, अब हम इसी में मजा लेंगे, अब हम इसी से मजबूत हो जाएंगे कि मिटाने में लगे, अब हम मिटा कर रहेंगे।
एक सम्राट को खबर मिली है कि उसका एक मित्र, एक फकीर गांव में आ रहा है राजधानी में। तो उसने सुना, साथ पढ़े थे वे दोनों, सोचा की नग्न फकीर है, दूर तक उसकी ख्याति है, उसका स्वागत करें। उसने सारे द्वारों को फूलों से सजा दिया और दीये जलवा दिए और इत्र छिड़कवा दिया और रास्ते सुंदर कर दिए। दीवाली मनवा दी। फकीर आ रहा था नग्न। रास्ते में यात्रियों ने उसे खबर दी कि कुछ पता है वह तुम्हारा मित्र है बचपन का सम्राट, वह तुम्हें हतप्रभ करना चाहता है, वह तुम्हें दिखाना चाहता है कि तुम क्या हो एक नंगे फकीर ही न, और एक हम हैं रास्तों पर इत्र बिछवा दिया है लाखों रुपये का। एक हम हैं कि दीये जलवा दिए हैं पूरे नगर में। एक हम हैं कि सारे नगर को सजा दिया है स्वर्गपुरी सा। और तुम क्या हो एक नंगे फकीर ही न? वह इतनी रौनक सजा कर तुमको हतप्रभ करना चाहता है।
उस फकीर ने कहाः घबड़ाओ मत, देख लेंगे। नंगा फकीर था, कुछ पास न था। यात्रियों ने सोचा कैसे देखेगा? क्योंकि देखने का, दिखाने को कुछ पास मालूम नहीं पड़ता। कपड़े भी नहीं हैं, ताकत भी नहीं है, एक पैसा पास नहीं है, बिल्कुल नंगा फकीर है। पर वे यात्री गौर से अगर देखते उसकी आंख में तो वे पहचान लेते कि वह दिखा देगा। क्योंकि उसकी आंखों में वह अहंकार था। दिन आ गया, स्वागत की तैयारी हो गई, गांव के बाहर बड़ा द्वार बना। सम्राट अपने मित्रों को लेकर वहां हाजिर है। फकीर आया, देख कर सम्राट हैरान हुआ, मित्र भी चकित हुए। घुटने तक उसके पैर कीचड़ से भरे हैं। इरानी कालीन बिछाए गए हैं महल तक उसके रास्ते पर। वह बहुमूल्य लाखों के कालीनों पर कीचड़ भरे पैरों से अकड़ कर चलने लगा। सम्राट ने रास्ते में कुछ न कहा। महल में पहुंच कर उसने कहा कि प्रतीत होता है रास्ते में कोई तकलीफ हुई है? लेकिन रास्ते सूखे पड़े हैं, पानी का कोई पता नहीं, वर्षा का मौसम नहीं, इतने पैर कैसे कीचड़ में सन गए होंगे? गड्ढा था कोई, गिर गए आप, चोट लगी? उसने कहाः न कोई गड्ढा था, न कोई चोट लगी, लेकिन तुम क्या समझते हो अपने को? अगर तुम इरानी कालीन बिछा कर अपनी शान बताना चाहते हो तो हम भी फकीर हैं, हम कीचड़ भरे पैरों से चल कर दिखा सकते हैं।
उस सम्राट ने उस फकीर को गले लगा लिया और उसने कहाः मैं तो समझता था तुम बदल गए होओगे, लेकिन कुछ भी बदला नहीं। हम सब वहीं हैं जहां थे। मैं तो बड़ा सोचता था कि तुम बदल गए होओगे। मैं तो बड़ा मन में दीन-हीन हो रहा था कि हम अहंकारी और कहां एक विनम्र साधु है? हम तो सोचते थे कहां अहंकार की दुर्गंध और कहां तुम्हारे जीवन की सुगंध? लेकिन नहीं, आओ गले मिल लें, कुछ बदला नहीं, सब वही है।
अब मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह सम्राट उस फकीर से ज्यादा विनम्र था। उसने कहा कि हम अहंकारी! अहंकार की दुर्गंध! और वह फकीर ज्यादा अहंकारी था। क्योंकि त्याग की सुगंध, साधु होने का दंभ! साधु होने का दंभ सिवाय असाधुओं के और किसको हो सकता है? लेकिन यह पीड़ा कि मैं अहंकारी हूं बहुत मूल्यवान है। इसलिए मैं नहीं कहता हूं कि आप मिटाने निकल जाएं अहंकार को। मिटाने मत निकलना अन्यथा वह नहीं मिलेगा। अहंकार को समझने निकलना पड़ेगा, मिटाने नहीं। और जो समझ लेता है उसका मिट जाता है। मिटाना नहीं पड़ता। क्योंकि जैसे ही हम समझते हैं हम पाते हैं कि अहंकार कोई चीज नहीं है। कोई स्थेटिक एनटाइटी नहीं है।
जैसे एक आदमी साइकिल चला रहा है। अब साइकिल को अगर चलाना है तो पूरे समय पैडल चलाना पड़ता है। आपका पैडल रुका उधर थोड़ी देर में साइकिल रुकी।
ऐसा नहीं है कि आप घंटे भर साइकिल चला चुके हैं तो अब घंटे भर आराम कर लें।
साइकिल चलती है चलाते रहने से। अनवरत साइकिल का चलना अनवरत क्रिया है।
अहंकार का पैदा होना अनवरत क्रिया है। अहंकार को चौबीस घंटे पैदा करना

पड़ता है, तब वह रहता है। और अगर आपको समझ में आ गया हो कि मैं इस-इस तरह पैदा करता हूं, इस-इस तरह पैदा करता हूं, और आपका पैडल रुक गया, तो वह विदा हो जाता है। वह कोई एनटाइटी नहीं है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है। अहंकार कोई वस्तु नहीं है, प्रक्रिया है, प्रोसेस है। कोई पदार्थ नहीं है कि कहीं रखा है कि हम लट्ठ लेकर उसके पीछे पड़ जाएं और उसको मिटा डालें। वह कोई पदार्थ नहीं है, वह एक प्रक्रिया है जो चौबीस घंटे पैदा हो रही है।
अहंकार जीने का एक ढंग है और प्रेम भी जीने का एक ढंग है। न तो प्रेम कहीं रखा है कि हम जाएं और भर लाएं और तिजोरियां भर लें और न अहंकार कहीं रखा है कि आग लगा दें और मिटा दें। अहंकार जीने का एक ढंग है, चौबीस घंटे उसे हमें पैदा करना पड़ता है। और प्रेम भी जीने का एक ढंग है, चौबीस घंटे हमें उसे भी सृजन करना पड़ता है। मेरी बात का मतलब यह है कि अहंकार को जब कोई समझने जाता है तो वह देखता है कि जब वह रास्ते पर चल रहा है तब भी अहंकार पैदा कर रहा है।
आपने कभी खयाल किया है कि आप अपने बाथरूम में दूसरे आदमी होते हैं और बैठकखाने में दूसरे आदमी हो जाते हैं। अब बाथरूम से बैठकखाने तक आने में बीच में कहां वह घटना घटती है जब आप बदल जाते हैं? बाथरूम में आप बिल्कुल और आदमी होते हैं, बच्चे की तरह सरल, हो सकता है कभी आईने में मुंह भी बिचकाते हो। बूढ़ा आदमी भी बिचकाता है। लेकिन बाथरूम में? बाहर तो मुंह बिचकाते बच्चे को वह अकल देता है कि क्या कर रहे हो? क्या बचपना कर रहे हो? लेकिन बाथरूम से बैठकखाने तक आने में कौन सी जगह वह जगह है जहां अहंकार पैडल भर लेता है और अकड़ कर बैठ जाता है आकर बैठकखाने में।
रास्ते पर आप जा रहे हैं, सुनसान रास्ता है, कोई नहीं है, आप दूसरे आदमी होते हैं। और फिर दो आदमी निकल आए पास की गली से, आप फौरन बदल कर दूसरे आदमी हो जाते हैं। आपकी चाल बदल जाती है, आंख बदल जाती है, रौब बदल जाता है, ढंग बदल जाता है। अभी आप निश्चिंत चले जा रहे थे। अहंकार नहीं था, पैडल नहीं लगा रहे थे आप। क्योंकि जब कोई मौजूद न था तो पैडल लगाने की जरूरत क्या थी? आप अकेले थे तो किसको अहंकार दिखाना था? लेकिन दो आदमी निकल आए, आप बदल गए, आप और हो गए।
इसको पहचानना पड़ेगा, अहंकार को चौबीस घंटे पहचानना पड़ेगा, कहां-कहां
हम उसे पैदा करते हैं? कैसे-कैसे उसे पैदा करते हैं? और अगर यह पहचान हमारी आ जाए तो फिर सड़क पर आप चलेंगे और पहचान पाएंगे कि ठीक इस क्षण में सब बदल गया। वे दो आदमी आए और सब गड़बड़ हो गई। यहां कुछ और तरह का आदमी आ गया है, मैं कुछ और हो गया। आप जब अपने मालिक के सामने होते हैं तब आपने देखा आप और होते हैं, जब नौकर के सामने होते हैं तब और होते हैं। यानी यहां तक हालत हो सकती है कि मालिक इस तरफ खड़ा है और नौकर उस तरफ खड़ा है, तो आपकी यह आंख और होती है और यह आंख और होती है। इधर मालिक खड़ा है तो यह आंख पूंछ हिलाती रहती है, इधर नौकर खड़ा है तो यह आंख दबाती रहती है, धमकाती रहती है।
आदमी अहंकार को चौबीस घंटे पैदा कर रहा है, उसे पहचानना पड़ेगा, उसकी खोज करनी पड़ेगी, उसका पीछा करना पड़ेगा कि वह कहां-कहां पैदा होता है? और कुछ नहीं करना सिर्फ उसकी खोज करनी है, वह कहां-कहां पैदा होता है? एक-एक गेस्चर में, एक-एक इशारे में वह पैदा हो जाता है। जरूरी नहीं है कि गेस्चर, इशारा हाथ जोड़ कर हम खड़े हों तो उसमें पैदा न हो जाए।
मंदिर में आदमी जब अकेला हाथ जोड़ कर खड़ा होता है तब भी थोड़ी बची हुई आंखों से दोनों तरफ देख लेता है कि कोई देख रहा है कि नहीं? कभी चार लोग देख लें और गांव में खबर कर दें कि यह आदमी धार्मिक है, नहीं तो बेकार मेहनत हो जाती है।
टाल्सटाय ने अपना एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि एक दिन सुबह मैं पांच बजे अंधेरे में चर्च पहुंच गया। अंधेरा था कोई दिखाई नहीं पड़ता था। लेकिन आवाज सुनाई पड़ती थी, तो मैं भीतर चला गया। भीतर गया तो देखा कि गांव का जो सबसे बड़ा धनपति है वह हाथ जोड़ कर भगवान से कह रहा है, कि मैंने बड़े पाप किए हैं मुझे माफ कर, मैंने बड़े अन्याय किए हैं मुझे माफ कर। मैं महापापी हूं पिता, मुझे क्षमा कर। टाल्सटाय और पास सरक गया, क्योंकि उस आदमी की तो बड़ी ख्याति थी कि चरित्रवान है और वह आदमी खुद कह रहा है मैं

महापापी हूं। वह और पास सरक गया। देख लें कि वही है न, देखा पास जाकर वही है। उस आदमी ने भी चौंक कर पीछे देखा, उसने कहा, कौन है? टाल्सटाय ने कहा कि मैं टाल्सटाय हूं। आश्चर्य! मैं तो सोचता था आप बड़े चरित्रवान हैं। उसने कहाः मैं हूं। कौन कहता है कि मैं चरित्रवान नहीं हूं? उसने कहा कि अभी आप कह रहे थे कि मैं महापापी हूं। तो उसने कहा कि वह परमात्मा से कह रहा था, तुमसे नहीं। और ध्यान रहे, अगर बाजार में किसी से जाकर कहा तो मानहानि का मुकदमा चलवा दूंगा। पर टाल्सटाय ने कहाः अभी तो आप कहते थे कि मैंने बड़े पाप किए हैं। उसने कहा कि कहता था, लेकिन तुमसे नहीं, वह हमारे और भगवान के बीच की बात है, वह किसी और की बात नहीं है। और ध्यान रहे, किसी को कहना मत बस्ती में जाकर। टाल्सटाय ने कहाः लेकिन कैसा मजा है, आप दो-दो तरह की बातें करते हैं--भगवान से एक तरह की और हमसे दूसरी तरह की।
टाल्सटाय ने लिखा हैः मैं समझ न पाया, क्या बात है। बात तो साफ है। टाल्सटाय के मौजूद होते ही अहंकार खड़ा हो गया पैडल मारने को। अब यह एक आदमी खड़ा हुआ सुन रहा है, यह बाजार में जाकर खबर कर देगा लोगों को कि यह आदमी अपने मुंह से कह रहा था कि मैं पापी हूं। भगवान से बात चल रही थी क्योंकि वह पापी जो कह रहा है भगवान से, तो वह भी जानता है। कहां भगवान? कैसा भगवान? सब बातचीत है। अगर भगवान भी मिल जाए, उसके सामने खड़ा हो जाए और निकल आए चर्च के बाहर और कहे कि ठीक, समझ लिया, तो वह उससे भी कहेगा कि ध्यान रखना यह बात प्राइवेट थी। यह बात नहीं थी, इसलिए किसी और से मत कह देना, नहीं तो मानहानि का मुकदमा चला दूंगा। यह तो प्राइवेट बात थी जो आपस में कर रहे थे, किसी को कहने की बात नहीं है। वह तो भगवान कभी निकलता नहीं इसलिए कोई झंझट नहीं। आप घर में भी किसी से यह कहते रहते हैं कि मैंने यह पाप किया है, मैंने वह पाप किया है। और यह कह कर भी अहंकार को मजबूत करते रहते हैं कि देखो मैं कितना सरल आदमी हूं जो सब पापों को कह रहा हूं। अभी तो मनोवैज्ञानिकों ने एक खोज की है जो बहुत हैरान करने वाली है।
रूसो ने एक आत्म-कथा लिखी है। उसके पहले संत अगस्तीन ने कनफेसंस नाम
से अपनी आत्म-कथा लिखी है। गांधीजी ने अपनी आत्म-कथा लिखी है। इधर कोई दो- तीन सौ वर्षों में कुछ लोगों ने ऐसी आत्म-कथाएं लिखी हैं जिसमें उन्होंने अपने पापों, अपनी गलतियों, अपनी बुराइयों का जिक्र किया है। अभी मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंच गए हैं कि इनमें कई पाप झूठे हैं जो उन्होंने किए नहीं सिर्फ लिखे हैं। बड़ी हैरानी की बात है! कोई आदमी पाप भी झूठे लिखेगा जो उसने किए नहीं? मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उसमें भी एक कारण है, वह आदमी दिखाना चाहता है कि देखो मैं कैसा महात्मा हूं अपने पाप भी बताए दे रहा हूं! अपने पाप भी बताए दे रहा हूं! जो उसने कभी नहीं किए। वह भी गिना रहा है कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, अपने सब पाप बताए दे रहा हूं! इतना अदभुत है आदमी का अहंकार। वह ऐसे सूक्ष्म रास्ते खोजता है। इसको पहचानना पड़ेगा, इसकी खोज करनी पड़ेगी। अहंकार की एकदम से हत्या नहीं की जा सकती। वह कहीं है नहीं जहां आप तलवार लेकर चले जाएं और मार डालें। वह एक प्रक्रिया है जिसे हम चौबीस घंटे पैदा कर रहे हैं। उसे हमें देखना पड़ेगा, देखना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा--उठते, बैठते, बात करते। जंगल में जाने से नहीं मिलेगा अहंकार। जंगल में जाने से इसलिए अक्सर लोग समझते हैं कि अहंकार-वहंकार सब खतम हो गया, अब हम बड़े विनम्र हो गए। अहंकार तो मिलेगा भीड़ में खड़े होने से--अंतर-संबंधों में, इंटररिलेशनशिप में। जब आप पत्नी से बात कर रहे हैं तब, जब मित्र से बात कर रहे हैं तब, जब दुकान पर बैठे ग्राहक से बात कर रहे हैं तब, जब चल रहे हैं, खाना खा रहे हैं, उठ रहे हैं तब। जिंदगी में मिलेगा अहंकार, एकांत में नहीं मिलेगा। एकांत में इसलिए नहीं मिलेगा क्योंकि वह पैदा ही दूसरे के साथ होता है। दूसरे के साथ हमारा जो संघर्ष चल रहा है वह उसमें ही पैदा होता है, नहीं तो वह पैदा नहीं होता। उसे खोजना होगा तो जिंदगी में खोजना पड़ेगा।
एक संन्यासी हिमालय पर रहा तीस वर्षों तक। शांत हो गया। हिमालय पर शांत हो जाता है आदमी। उसमें आदमी की कोई खूबी नहीं है, हिमालय की वजह से शांत हो गया। उसने कहा मैं तो बिल्कुल शांत हो गया--अब तो कोई न क्रोध उठता है। क्रोध कैसे उठे, क्रोध उठाने वाले चाहिए। अब एक कुआं है, कोई बाल्टी

लेकर पानी भरने नहीं आता, तो कुआं सोच सकता है अब अपने में पानी न रहा। लेकिन कोई बाल्टी लेकर आए तो फौरन पता चल जाए कि पानी है। बाल्टी से पानी निकलना चाहिए तब पता चलता है। जब एक आदमी मुझे गाली देता है तब वह बाल्टी डाल रहा है मेरे कुएं में। अब अगर क्रोध है तो बाहर निकल आएगा और नहीं है तो बाल्टी खाली आ जाएगी। जब बाल्टी खाली आए तब मुझे जानना चाहिए कि क्रोध नहीं है। लेकिन मैं चला गया जंगल में, अब वहां कोई बाल्टी डालने वाला नहीं, अब हम बैठे हैं अकेले, हम सोचते हैं क्रोध वगैरह तो सब विदा हो गया। एक तो गाली देने वाला नहीं है। स्त्रियों से भाग कर ब्रह्मचारी हो जाना कितना आसान है? बहुत आसान है। उससे आसान कोई और बात हो सकती है? लेकिन वह ब्रह्मचर्य नहीं ब्रह्मचर्य का धोखा है, डिसेप्शन है। जिंदगी में कसौटी... वह आदमी तीस साल बाद शांत हो गया था। असल में अशांत होने का कोई कारण ही न रहा था। विनम्र हो गया था क्योंकि अहंकारी होने की कोई वजह न रह गई थी। किससे कहे कि मैं हूं? वृक्षों से कहो तो वृक्ष बहुत हंसे। पौधों से कहो तो पौधे सुने न। पक्षियों से कहो तो वे उड़े चले जाएं। कहे किससे कि मैं हूं? कोई न था सुनने वाला, चुप हो गया।
फिर धीरे-धीरे उसकी खबर पहुंच गई नीचे गांव तक, लोग आने लगे। और लोगों
ने उससे प्रार्थना की कि जल्दी ही एक मेला है, आप चलें। हजारों लोग वहीं आपके दर्शन कर लें, हम यहां कहां तक आएं?
अक्सर लोग महात्माओं को वहां खींच लाते हैं जहां वे होते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, उधर आसानी रहेगी। महात्मा जहां होते हैं वहां वे नहीं जाते, उतनी चढ़ाई कौन करे? कहते हैं, आप खुद ही नीचे आ जाइए थोड़ा अगर हमारे पास तो ठीक रहेगा। और जिनको पूजा करवानी होती है, धीरे-धीरे-धीरे वहीं आकर खड़े हो जाते हैं। तो ठीक है, हम ही आ जाते हैं। महात्मा ने कहाः ठीक है, अब डर भी क्या है, अब तो मैं शांत भी हो गया, आनंदित भी हो गया। अहंकार भी न रहा, क्रोध भी न रहा, अब चल सकता हूं। उसे उतार लाए भक्तगण नीचे। लेकिन वहां तो बड़ी भीड़ थी, लाखों लोगों का मेला था। लोग न तो कोई जानते थे, न पहचानते थे। बड़ा भीड़-भड़क्का था। महात्मा जब भीड़ में आया भीतर तो एक आदमी का जूता उसके पैर पर पड़ गया। तीस साल का महात्मा कहां विदा हो गया एक सेकेंड में पता नहीं चला।, कस कर उसकी गर्दन पकड़ ली और कहाः अंधे दिखाई नहीं पड़ता, जानता नहीं मैं कौन हूं? तब उसे खयाल आया वे तीस साल का क्या हुआ? पैडल लग गया वापस। वे तीस साल विदा हो गए। वे नहीं रहे, वहां खतम हो गए। वे अब नहीं रहे। वे तीस साल से कुछ फायदा न हुआ। साइकिल पर बैठे फिर पैडल नहीं चला रहे थे। साइकिल भी मौजूद थी, पैडल भी मौजूद था, हम भी मौजूद थे, सब मौजूद था, सिर्फ पैडल नहीं चल रहा था। क्योंकि किसके लिए चलाएं, कोई था नहीं। एक आदमी ने जूता मार दिया पैर पर, चल गया पैडल। एक सेकेंड में हो गई घटना।
तब उसे खयाल आया कि आश्चर्य, वे तीस साल कहां गए? वह कहां गई शांति जो जंगल में थी? वह कहां गई विनम्रता जो पहाड़ पर थी? वह सब खो गई। वह वापस लौट गया। उसके भक्तों ने कहा कि कहां जा रहे हो? उसने कहा कि अब मैं जा रहा हूं और घनी भीड़ में। पहाड़ पर नहीं जा रहे हैं? उसने कहाः नहीं, अब नहीं जा रहा हूं। तीस साल हिमालय जो न बता पाया वह एक मनुष्य के संपर्क से पता चल गया। अब मैं और भीड़ में जा रहा हूं। अब मैं दुनिया में जा रहा हूं। अब मैं वहीं देखूंगा कि क्या हो सकता है?
अहंकार को पहचानना पड़ेगा जिंदगी की सारी व्यवस्था में। और बड़े मजे की बात यह है कि जहां-जहां आप पहचान लेंगे वहीं-वहीं अहंकार असंभव हो जाएगा। पहचान कर कोई अहंकारी नहीं हो सकता। जहां पहचानना है वहीं असंभव हो जाएगा। क्योंकि अहंकार अकड़ तो दूसरे को दिखाता है लेकिन दुख खुद को दे जाता है। अहंकार चमक तो दूसरे को दिखाता है लेकिन छाती अपनी जला जाता है। अहंकार ऊपर तो रोब दिखाता है लेकिन भीतर पीड़ा से भर जाता है। अहंकार फोड़े की तरह है; ऊपर तो उठ आता है, दिखाई पड़ने लगता है, भीतर मवाद पड़ जाती है। लेकिन जब पता चल जाए कि ऐसे-ऐसे मैं अहंकार पैदा कर रहा हूं, इस-इस ढंग से, तो वे ढंग विदा हो जाएंगे। जिस दिन अहंकार सब रास्तों से पहचान लिया जाता है, उस दिन आदमी अहंकार से खाली रह जाता है। जिस दिन आदमी अहंकार से खाली

है, उस दिन पत्थर हट जाता है और प्रेम के झरने फूट पड़ते हैं, फिर प्रेम की यात्रा शुरू हो जाती है। फिर वे यात्राएं नहीं रुकती, नहीं रुकती वहां तक जहां तक सागर न आ जाए। छोटी सी नदी भी चलती है तो सागर तक पहुंच जाती है। फिर रुकती ही नहीं। कितनी ही भटके, कितनी ही परेशानियां आएं, गड्ढे और पहाड़ मिलें, वह जाती है, जाती है और पहुंच जाती है। सब नदियां सागर तक पहुंच जाती हैं। छोटी-छोटी बूंद भी रास्ता बना लेती है सागर तक पहुंचने का और पहुंच जाती है। लेकिन एक बार पत्थर हट जाए आदमी का तो आदमी और परमात्मा के बीच कोई रुकावट नहीं है सिवाय आदमी के अपने अहंकार के। अहंकार जहां नहीं है वहां प्रभु उपस्थित हो जाता है।
अब मैं आपसे कैसे कहूं कि अहंकार को मिटाएं, नहीं, मिटाने की नहीं कह सकता, अहंकार को जानें, पहचानें, खोजें, आमना-सामना कर लें, और फिर आप पाएंगे कि अहंकार नहीं रह गया है। जहां नहीं है अहंकार वहां प्रभु है। मैं ब्रह्म हूं, ऐसा नहीं है, जहां मैं नहीं हूं वहीं ब्रह्म है।
इन तीन दिनों में ये थोड़ी सी बातें कहीं। इस संबंध में जो भी प्रश्न हों, वह कल मैं उनकी चर्चा करूंगा। और जिन्हें इस "मैं नहीं हूं" के भाव को अनुभव करना है, वे सुबह के ध्यान में साढ़े आठ बजे उपस्थित हो जाएं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम दर्शन
चौथा प्रवचन

विद्रोही भगवान

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछले तीन दिनों में सुबह और सांझ जो बाते मैंने कहीं है, उस संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। जितने प्रश्नों का उत्तर संभव हो सकेगा वह मैं देने की कोशिश करूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि कहा जाता है प्रेम अंधा है और आप कहते हैं कि प्रेम परमात्मा है। तब क्या परमात्मा भी अंधा है?

उन्होंने ठीक पूछा है। सदियों से यह कहा जा रहा है कि प्रेम अंधा है।
और यह वे ही लोग कहते हैं जिन्हें प्रेम का कोई अनुभव नहीं है। जिन्हें प्रेम का अनुभव है वे तो कहते हैं प्रेम के अतिरिक्त कोई आंख ही नहीं है। क्योंकि प्रेम जो देख पाता है और कोई आंख नहीं देख पाती है। प्रेम ही आंख है। जिन्होंने प्रेम को जाना है उनका तो ऐसा अनुभव है। और प्रेम की आंख से यह जगत जब देखा जाता है तो जगत दिखाई नहीं पड़ता परमात्मा दिखाई पड़ता है।
घृणा की आंख से जब इस जगत को देखा जाता है तो पदार्थ दिखाई पड़ता है और जब प्रेम की आंख से देखा जाता है तो परमात्मा दिखाई पड़ता है। प्रेम आंख है। और हमारे पास जैसी आंख होती है वैसा हमें दिखाई पड़ने लगता है।
मैं दो-एक घटनाओं से समझाने की कोशिश करूंगा।
सुना है मैंने कि रामदास राम की कथा लिखते थे। रोज लिखते थे, रोज सांझ
को कह देते थे। जो लोग सुनने आते थे, उनकी भीड़ रोज-रोज बढती चली गई। और कहानी यह कि हनुमान तक खबर पहुंच गई कि हजारों साल बाद रामदास फिर से वह कहानी कह रहे हैं। और भीड़ में छुप कर वे भी उसे सुनने आने लगे। वह इतनी आनंदपूर्ण थी कि वे उसे सुनने आते। फिर वह बात आई जहां हनुमान राम की उस कथा में सीता से मिलने अशोक वाटिका में गए हैं, तो रामदास ने वहां लिखा कि अशोक वाटिका में सफेद-सफेद फूल खिले थे। रामदास ने जब यह कहा तो हनुमान से सहा न गया, फूल सब लाल थे। तो उन्होंने कहा, वे खड़े हो गए, उन्होंने कहाः माफ करिए, भूल सुधार कर लीजिए--फूल सफेद नहीं थे, सब लाल थे। रामदास ने कहाः फूल सफेद ही थे, कृपा करके बैठ जाइए। तब हनुमान को कहना पड़ा कि आपको शायद पता नहीं मैं खुद हनुमान हूं, मैं गया था, आप हजारों साल बाद सुनी-सुनाई कहानी लिख रहे हैं, मैं कहता हूं कि फूल लाल थे, आप सुधार कर लें। रामदास ने कहाः होंगे आप हनुमान और गए होंगे, लेकिन फूल सफेद थे। बहुत मुश्किल हो गई। और कहानी है कि झगड़ा राम के पास ले जाना पड़ा, इसके सिवाय कोई उपाय न रहा। और हनुमान ने कहा कि इस आदमी की हठधर्मी देखिए, यह अपनी किताब में लिखता है कि फूल सफेद थे अशोक वाटिका में और मैं इसे कहता हूं कि हनुमान हूं मैं खुद, सुधार कर ले, फूल लाल थे। अब आपके हम पास आएं हैं, यह मानने को राजी नहीं है।
राम ने कहाः फूल तो सफेद ही थे, लेकिन तुम इतने क्रोध में थे कि तुम्हें लाल दिखाई पड़े। रामदास ठीक कहता है, सुधार तुम भी कर लो। तुम्हारी आंखें क्रोध के कारण खून से भरी थीं।
सीता चोरी चली गई हो तो हनुमान की आंखों में खून बिल्कुल स्वाभाविक है। और खून से भरी आंख को अगर फूल लाल दिखाई पड़े तो यह भी कुछ आश्चर्य नहीं।
हमें वही दिखाई पड़ता है जो हमारी आंख देख पाती है। प्रेम की आंख परमात्मा को देख पाती है। और परमात्मा अंधा है या आंख वाला, यह सवाल नहीं उठता, क्योंकि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जो उसकी आंख हो सके या वह अंधा हो सके, परमात्मा एक अनुभूति है। प्रेम से जो अनुभूति उपलब्ध होती है, प्रेम से देखा गया जो अस्तित्व है वह परमात्मा जैसा प्रतीत होगा। जैसी हमारे पास आंख है वैसा दिख जाता है। लेकिन प्रेम के खिलाफ लंबी-लंबी परंपरा है जो प्रेम को अंधा कहती है। उसके भी पीछे कारण हैं। कोई परंपरा

यूं ही नहीं बन जाती है। असल में जब भी हमारी जिंदगी में किसी व्यक्ति के जीवन में प्रेम आता है तो हमारे व्यवहार की दुनिया को एकदम अस्त-व्यस्त करके लगता है। वह, जिसे हमने नियम बनाए, नियम नहीं मानता; वह, जिसको हमने व्यवस्था बनाई, व्यवस्था नहीं मानता। उसकी जिंदगी में एक नया विधान आ गया, वह हमारे सब विधान को ठुकरा देता है। वह हमारी भीड़ उससे कहती है कि यह आदमी मालूम होता है कि अंधा हो गया है, प्रेम ने इसे अंधा कर दिया है।
मजनू को उसके गांव के राजा ने बुला लिया था पकड़वा कर। और यह पूछा था उससे कि तू पागल हो गया है, तुझे और कोई दिखाई नहीं पड़ता सिवाय लैला के? दिन-रात तू लेला-लेला चिल्लाता रहता है, पागल है तू, इससे बहुत सुंदर लड़कियां है गांव में, मैंने कुछ सुंदर लड़कियां बुलाई हैं तू किसी को भी पसंद कर ले, लैला का खयाल छोड़ दे। तो मंजनू ने कहा कि शायद आपको पता नहीं कि मुझे लैला के सिवाय अब कोई लड़की दिखाई ही नहीं पड़ती। उस राजा ने कहाः तू पागल तो नहीं हो गया है? ठीक कहा राजा ने। लेकिन मजनू ने कहा कि हो सकता है मैं पागल ही हो गया हूं, लेकिन भगवान से मेरे लिए प्रार्थना करो की मेरा यह पागलपन टूट न जाए। राजा ने कहाः तू अंधा तो नहीं हो गया है? मंजनू ने कहाः भगवान करे कि यह अंधापन स्थायी हो जाए और मुझे सिर्फ लैला ही दिखाई पड़े। राजा ने कहाः पागल, साधारण सी लड़की है लैला। बहुत सुंदर लड़कियां हैं। मजनू ने कहाः आपके पास वह आंख नहीं जो लैला को देख सके। लैला सुंदर है या असुंदर, यह सवाल नहीं है, इस प्रेम की आंख ने उसे सुंदर बना दिया है। सुंदर कोई नहीं होता है, न कोई असुंदर होता है। जिस पर हमारी प्रेम की आंख पड़ जाती है उसमें सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। लोग कहते हैं, सुंदर को हम प्रेम करते हैं, गलत कहते हैं, उलटा कहते हैं। जिसे हम प्रेम करते हैं वह सुंदर दिखाई पड़ने लगता है। जिसे हम प्रेम नहीं करते वह असुंदर दिखाई पड़ने लगता है। जिसे आज प्रेम करते हैं वह आज सुंदर दिखाई पड़ता है, कल अगर प्रेम तिरोहित हो जाए तो वही असुंदर भी दिखाई पड़ने लगता है, वही। प्रेम की एक आंख है जब हम एक व्यक्ति को प्रेम की आंख से देखते हैं तो वह व्यक्ति साधारण नहीं रह जाता, वह व्यक्ति एकदम असाधारण हो जाता है। जब हम एक व्यक्ति में प्रेम से झांकते हैं तो एक व्यक्ति में परमात्मा मिल जाता है। और जब हम समस्त जगत में, अस्तित्व में प्रेम से झांकते हैं तो समस्त अस्तित्व में परमात्मा मिल जाता है। जिसे परमात्मा को खोजना है उसके लिए तो प्रेम ही आंख है और अंधापन, अंधापन उसके लिए आंख है।
अरविंद ने लिखा है कि जब मेरी आंख खुली तब मैंने जाना कि जिनको मैं अब
तक आंख समझता था वह अंधापन था। और जब मैं जागा तब मैंने समझा कि जिसको मैं अब तक जागना समझता था वह नींद है। और जब मैंने भीतर झांका और उसे देखा जो था, तब मैं हैरान हो गया, क्योंकि जिसे मैं बाहर से स्वयं समझ रहा था वह सिर्फ खोट है, वस्त्र था। और जब मैंने प्रकाश देखा उसका तब मैं हैरान हो गया कि अब तक जिसको मैंने प्रकाश समझा था वह अंधकार था। लेकिन हमारी इतनी मजबूरी है। रात हम सोते हैं, सपना देखते हैं, सपने में सपना भी सच मालूम होता है। कभी सपने में सपना झूठ मालूम हुआ है? सपने में सपना ही सच मालूम होता है, ऐसा लगता है जो है यही है। सुबह जाग कर पता चलता है कि पागल थे हम, रात भर लगता रहा कि ठीक है, वह बिल्कुल न था। जब कोई जागता है प्रभु के प्रेम में तब उसे पता चलता है कि जिन्हें हमने आंख समझी थी वह अंधापन था और जिसे हम अब तक अंधापन समझे थे वह आंख थी। लेकिन वह कोई जागे तब ही पता चलता है।
हां, दूसरा अगर कोई प्रेमी हो जाए प्रभु का तो हमें पागल ही मालूम पड़ेगा। क्योंकि हमारे पास वह आंख नहीं जो उसके पास है। हमारी तकलीफ सदा ये है कि दूसरे का अनुभव कैसे हमारा अनुभव बने? हमारा अनुभव नहीं बन सकता। फिर हमारी भीड़, हम ज्यादा हैं, वे प्रेम करने वाले अकेले हैं। कभी कोई चैतन्य प्रेम से भरा है, तो कभी मीरा। वे अकेले पड़ जाते हैं हमारी भीड़ है, हम ज्यादा हैं, हम चाहें तो उनको पागल कहें, और चाहें तो अंधे कहें। हम उनको जो भी कहें उन्हें सुनना पड़ेगा, क्योंकि वे अकेले हैं।
एक छोटी सी कहानी फिर मैं दूसरा सवाल लूं। एक दिन ऐसा हुआ कि एक गांव में एक आदमी आया और उसने उस गांव के एक कुएं से पानी पीते देख लिया, और कहा

कि अब जो इसका पानी पीएगा वह पागल हो जाएगा। सांझ तक सारे लोगों को पानी पीना पड़ा, सारे लोग पागल हो गए। सिर्फ राजा का कुआं अलग था, उसने पानी नहीं पिया। उसने अपने कुएं का पानी पीया। राजा बहुत खुश था। उसने अपनी रानी को, अपने वजीरों को कहा कि हम भाग्यशाली हैं, हम बच गए पागल होने से। लेकिन उसे पता नहीं कि जिसे वह भाग्य समझ रहा है वह दुर्भाग्य बन जाएगा। सांझ होते- होते गांव में अफवाहें उड़ने लगी कि मालूम होता है राजा का दिमाग खराब हो गया है।
पूरे गांव का दिमाग खराब हो गया है। रात होते-होते गांव के लोगों ने महल घेर लिया और उन्होंने कहाः इस राजा को हम एक क्षण बरदाश्त नहीं कर सकते, इसका दिमाग खराब हो गया है। उन्होंने कहा कि हटो तुम महल से, छोड़ो सिंहासन, अब हम किसी बुद्धिमान आदमी को बिठाएंगे। नीचे लोग नाच रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, बक रहे हैं, कुछ भी कर रहे हैं। राजा ने छत पर खड़े होकर अपने वजीरों से कहा मुश्किल हो गई, यह सारा गांव पागल हो गया है। उसके सैनिक भी पागल हो गए हैं, पहरेदार भी पागल हो गए हैं, अब वह बचाए भी तो उसको कौन बचाए? तो उसने कहाः मैं क्या करूं? वजीर ने कहा कि मैं इन्हें थोड़ी देर रोकने की कोशिश करता हूं, तुम पीछे के दरवाजे से जाओ और उस कुंए का पानी पीकर जल्दी लौटो। राजा भागा हुआ गया और उस कुएं का पानी पीकर वापस लौटा। गया तो पीछे के दरवाजे से था, आया सामने के दरवाजे से। अब पीछे और आगे के दरवाजे में कोई फर्क ही न रह गया था। अब वह नाचता हुआ चला आ रहा है। और भीड़ ने उसे घेर लिया उसने कहा, धन्यवाद भगवान! उस रात जलसा मनाया गया गांव में कि हमारे राजा का दिमाग ठीक हो गया।
भीड़ जिस ढंग से सोचती है तो उस ढंग से सोचने में प्रेम अंधापन है। लेकिन जो प्रेम को उपलब्ध होते हैं वे जिस ढंग से देख पाते हैं उस ढंग से प्रेम आंख है। लेकिन निर्णय जल्दी मत कर लेना। प्रेम में जाकर देखना फिर आपको दोनों अनुभव हो जाएंगे। प्रेम के पहले का अनुभव और प्रेम के बाद का अनुभव। जिसे दोनों के अनुभव हों उसे कुछ कहने का हक है। दोनों अनुभव कर लें। और अब तक जिसने दोनों अनभुव किए हैं वह कहता है, प्रेम आंख है। और जिसने एक ही अनुभव किया है, प्रेम का अनुभव नहीं किया, वह कहता है, अंधापन है। नहीं, प्रेम अंधापन नहीं है। प्रेम से ज्यादा और कोई दर्शन और कोई दृष्टि नहीं है। जो प्रेम से दिखता है वह और किसी तरह नहीं दिखता रहा है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप प्रेम पर इतना जोर देते हैं और ज्ञान पर नहीं?

असल में प्रेम के बिना जो जाना जाता है वह ज्ञान नहीं हो सकता। प्रेम
के अभाव में जो जाना जाता है वह सिर्फ इनफर्मेशन हो सकती है, सूचना हो सकती है, ज्ञान नहीं हो सकता। सूचना एक बात है, इनफर्मेशन एक बात है, लेकिन ज्ञान बहुत दूसरी बात है। ज्ञान का मतलब हैः जिसे हम अपने प्राणों से जानते हैं। लेकिन प्राणों से हम सिर्फ उसी को जान सकते हैं जिसके साथ हम अपने प्राणों को डूबा देते हैं और एक कर देते हैं। सूचना का मतलब हैः जिसे हम अपनी खोपड़ी से जानते हैं। और खोपड़ी से जानने का मतलब है जिसके साथ एक होने की कोई जरूरत नहीं होती, जिससे हम दूर खड़े रहते हैं और जान लेते हैं, हम अलग होते हैं और जान लेते हैं।
जो ज्ञान हमारे प्राणों के पोर-पोर में प्रवेश नहीं करता, दूर खड़ा रहता है, हमारी मुट्ठी में होता है, वह ज्ञान ज्ञान नहीं है सिर्फ पांडित्य है। और पांडित्य का धर्म से कोई भी नाता नहीं। पापी तो परमात्मा तक कभी पहुंच भी जाएं, पंडित कभी परमात्मा तक न पहुंचे हैं, न पहुंच सकते हैं। पांडित्य एकदम उधार बात है, जिसका हमारे जीवन से कोई संबंध नहीं है। मैं गीता प.ढ़ लूं और गीता कंठस्थ कर लूं तो मैं पंड़ित न हो जाऊंगा। और कृष्ण जिस भांति बोले थे मैं भी बोल सकता हूं उसी भांति, लेकिन वह उधार होगा। वह हिज मास्टर वॉइस का रिकॉर्ड होगा, लेकिन वह कृष्ण की आवाज न होगी। गीता तो मैं भी पढ़ कर बोल सकता हूं, कोई भी बोल सकता है। कंठस्थ कर ले और हो सकता है कि कृष्ण से कभी भूल भी हो जाए, मुझसे भूल न होगी। क्योंकि

कृष्ण को बेचारे को पहली दफा कहनी पड़ी और मैं तो उसको कंठस्थ पच्चीस दफा दोहरा कर कर सकता हूं। लेकिन फिर भी वह कृष्ण की बात न होगी, वह उधार होगी, बासी होगी, पंडित की होगी, क्यों? क्योंकि कृष्ण उसे जान रहे हैं, मैं उसे जान नहीं रहा हूं। कोई जान रहा है, मैं उसको दोहरा रहा हूं।
किसी और के जानने को दोहराना ज्ञान नहीं है, किसी और के जानने को दोहराना सिर्फ स्मृति है। अपने जानने को, अपने जानने को, लेकिन अपने जानने को कैसे कोई कहे? वह तभी कह सकता है जब जाने। और जीवन को जानना हो तो जीवन के साथ एक हो जाना जरूरी है।
मैंने सुना है, एक समुद्र के किनारे मेला भरा था। और बहुत लोग गए थे।
दो नमक के पुतले भी पहुंच गए थे उस मेले में। कई लोग किनारे पर खड़े होकर सोचते थे कि गहराई कितनी? कुछ लोग ऐसे हैं कि किनारों पर खड़े होकर ही सोचते रहते हैं कि गहराई कितनी? अब किनारों पर खड़े होकर कहीं गहराई का पता लगा है? किसी ने कहा कि किताबें ढूंढो, पुस्तकालयों में जाओ, कहीं गहराई जरूर लिखी होगी, उससे पता चल जाएगी। किसी ने कहा किसी जानकार को ढू.ंढो, किसी बुजूर्ग को पकड़ लाओ मेले से, वह बता सकेगा। लेकिन सब किनारे पर खड़े हैं, कोई भीतर जाने को तैयार नहीं। वे नमक के पुतले दोनों खड़े थे, उन्होंने कहा कि ठहरो! इतने परेशान क्यों होते हो, हम जरा डूबे जाते हैं और पता लगा आते हैं। एक नमक का पुतला कूद गया सागर में पता लगाने के लिए। और नमक का पुतला ही कूद सकता है सागर में। क्योंकि सागर और नमक का पुतला एक ही है। इसलिए नमक के पुतले को डर नहीं है सागर का। वह कूद सकता है। सजातीय है, वह एक है। वह कूद गया, वह गहरा उतरने लगा। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ा। जैसे- जैसे वह गहरा गया वैसे वैसे-वैसे पिघला। जैसे-जैसे गहरा गया वैसे-वैसे मिटा। पहुंच तो गया गहराई में, लेकिन जब पहंच गया तो लौटने को बचा नहीं। तब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया कि अब मैं खबर कैसे दूं? कैसे खबर पहुंचाऊं? चिल्लाने लगा उस गहराई से। लेकिन उस गहराईर् से कोई आवाज न पहंचती थी ऊपर घाट तक। कहां घाट, कहां गहराई? जो घाट पर खड़े हैं उन्हें गहराई से कोई आवाज कभी नहीं पहुंचती। गहराई से लोग चिल्लाए चले जाते हैं पहुंचती नहीं आवाज। तो दूसरे पुतले ने कहाः मित्र नहीं लौटा, मैं जरा उसका पता लगा आऊं। तो वह भी कूद गया।
फिर बहुत वर्ष बीत गए। हर बार मेला भरता है। उस किनारे पर तख्ती लगी
है कि शायद वे लोग कभी लौटें। पर लौटे नहीं। वे लौटेंगे भी नहीं। क्योंकि वे उस गहराई में एक हो गए हैं। उन्होंने जान ली है गहराई। जानने का रास्ता एक ही था कि वे डूब जाते, पूरे डूब जाते। असल में प्रेम है डूबने की प्रक्रिया। पूरे डूब जाने की प्रक्रिया। जब कोई प्रेम में पूरा डूबता है तो वह जान लेता है। जरूरी नहीं है कि कह पाए। और सच तो यह है कि जो भी महत्वपूर्ण है वह कभी भी कहा नहीं जा सका है। जो भी महत्वपूर्ण है, नहीं कहा जा सकता है। कहने की कोशिश की गई हैं--कृष्ण कोशिश करते हैं, बुद्ध कोशिश करते हैं, लाओत्सु, जीसस, सब कोशिश करते हैं कहने की, लेकिन फिर सब कहने के बाद वे यह कहते हैं कि जो कहना था वह तो कहा नहीं जा सका। और तुमने जो सुन लिया है वह तो हमने कभी कहा ही नहीं था।
लाओत्सु ने एक किताब लिखी है। जिंदगी भर किताब नहीं लिखी। लोग बहुत कहते कि लिख दो अपना संस्मरण, वह कहता है कि जो जाना है उसे जब भी लिखने बैठता हूं तो ऐसा लगता है कि वह इतना मरा हुआ हो गया और जो जाना है वह इतना जीवित था। असल में शब्द जीवित कैसे हो सकते हैं, अनुभव जीवित हो सकते हैं। मैंने किसी को हृदय से लगाया, तो उस क्षण मैंने जो जाना है वह तो एक जीवंत अनुभव है, फिर मैं कागज पर लिखता हूं कि मैंने किसी को हृदय से लगाया, और जब उस स्याही से लिखी लकीर को पढ़ता हूं, तो और कोई जीवन नहीं होगा वहां सिर्फ लकीरे होती हैं, कागज होता है, जिसमें कोई जिंदगी नहीं होती। क्या मैंने जो लिखा कागज पर कि मैंने एक व्यक्ति को हृदय से लगाया यह वही है जो मैंने हृदय से लगाते क्षण जाना था? इन दोनों में तो जमीन-आसमान का फर्क है, यह तो बात नहीं है वही। वह तो कुछ बात ही और थी। वह जिंदा अनुभव था। और यह तो एक मरी हुई लकीर है कागज पर। तो क्या इसी को मैं कह दूं कि यही जाना था?

लाओत्सु ने लिखा नहीं। वह मरने के करीब था, छोड़ कर जंगल जा रहा था, तो
उस देश के राजा ने उसे पकड़वा लिया और उससे कहा कि ऐसे न जाने देंगे, हमारा कर्ज चुका जाओ। जो तुमने जाना है वह लिख जाओ। तो उसे मजबूरी में लिखना पड़ा। उसने छोटी सी किताब लिखी। और उस किताब की भूमिका में यह लिखा है कि किताब पढ़ने से पहले इसको ठीक से पढ़ लेना। लाओत्सु ने लिखा कि सत्य को कहा नहीं जा सकता और मुझे कहने को मजबूर किया जा रहा है और सत्य कहते ही असत्य हो जाता है। अब मैं सत्य के संबंध में लिखता हूं। वह भूमिका लिख रहा है किताब की कि मैं सत्य के संबंध में लिखता हूं। और ध्यान से इसको पहले पढ़ लेना, फिर मेरी किताब को पढ़ना, नहीं तो किताब हाथ में पकड़ जाएगी, सत्य कभी पकड़ में नहीं आएगा।
ऐसा ही जैसे मैं चांद की तरफ अगुंली करके इशारा करूं कि वह रहा चांद
और आप मेरी अंगुली पकड़ लें। तो मैं आपसे कहूं कि छोड़ो मेरी अगुंली, क्योंकि यह चांद नहीं। आप कहें, आपने ही तो बताया था कि यह रहा चांद। अंगुली से बताया था, अंगुली नहीं बताई थी। और अंगुली से जिसे बताया था उसका अंगुली से कोई लेना-देना नहीं है। और जिसे अंगुली से बताया था जो अंगुली पकड़ लेगा वह उसकी तरफ देख भी न पाएगा। अंगुली छोड़नी पड़ेगी उस तरफ देखना पड़ेगा। जहां कोई अंगुली नहीं पहुंचती, कोई शब्द नहीं पहुचंता सत्य तक, कोई शास्त्र नहीं पहुंचता सत्य तक, कोई सिद्धांत नहीं पहुंचता सत्य तक, लेकिन प्रेम पहुंच जाता है। प्रेम भी इसलिए पहुंच जाता है कि खुद ही डूबना पड़ता है।
मैंने तुम्हें ज्ञान की बात इसीलिए नहीं की कि इस देश में तो ज्ञान बहुत भारी पड़ गया है, हमारी छाती पर पत्थर की तरह रखा हुआ है ज्ञान। सब जानते हैं और कोई भी नहीं जानता है। सब जानते हुए मालूम पड़ते हैं। दरवाजे के सामने पड़े हुए पत्थर का भी पता नहीं है कि क्या है, लेकिन परमात्मा के संबंध में विवाद कर रहे हैं बैठ कर कि वह कैसा है और क्या है? परमात्मा पर छोड़ दे सकते हैं कि मस्जिद वाला परमात्मा सच है कि मंदिर वाला परमात्मा सच है? जिसका कोई भी पता नहीं उसके नाम पर कुछ भी हो सकता है। सामने पड़े हुए दरवाजे के पत्थर के बारे में पहचान नहीं कर पाते हैं कि क्या है? एक छोटा सा कंकर भी इतना बड़ा रहस्य है कि अब तक हम नहीं जानते हैं कि वह क्या है? परमात्मा तो बहुत बड़ा रहस्य है। और जिनको यह खयाल है कि हम जानते हैं, इस जानने के खयाल के कारण ही वे उस रहस्य में कभी प्रवेश न कर पाएंगे। वह जो नोइंग एटिट्यूड है, उन्हें जानने का खयाल है, वह जानने का सबसे बड़ा दुश्मन है। जिस आदमी को यह खयाल पैदा हो गया कि मैं जानता हूं, उसके द्वार बंद हो गए और वह कभी नहीं जान पाएगा। क्योंकि अब जानने का कोई सवाल ही न रहा। वह जानता ही है। इसलिए यह कहा कि पंडित नहीं पहुंच पाते परमात्मा को। क्योंकि पंडित पक्का जानते हैं, उन्हें मालूम है इसलिए वे कोई यात्रा नहीं करते। यात्रा तो वह करता है जिसे मालूम नहीं। यात्रा तो वह करता है जिसे अज्ञान की पीड़ा है। यात्रा तो वह करता है जो कहता है मुझे पता नहीं, पता नहीं, पता नहीं।
एक गांव में एक फकीर ठहरा है और उस गांव के लोगों ने कहा कि चलो मस्जिद में हमें ईश्वर के संबंध में कुछ समझा दो। उसने कहाः जाओ भी, अगर ईश्वर के संबंध में कुछ समझाया जा सकता तो पहले ही समझा दिया गया होता। मुझे झंझट में मत डालो। लोग नहीं माने। कहा कि चलो भई, नहीं माने तो बेचारा फकीर आ गया। वह मस्जिद के मंच पर खड़ा हो गया। शुक्रवार का दिन है, मस्जिद ठसा-ठस भर गई है। उसने लोगों से पूछा कि मित्रो, पहले एक सवाल मैं पूछ लूं फिर मैं बोलूं। मैं तुमसे जानना चाहता हूं कि ईश्वर है, तुम मानते हो? तो मस्जिद के सारे लोगों ने हाथ उठा दिए, उन्होंने कहाः है, हम जानते हैं। उस फकीर ने कहाः फिर मुझे क्यों परेशान कर रहे हो। मैं जाऊं, तुम जानते ही हो बात खतम हो गई। और उसके आगे कुछ जानना नहीं है जो मैं बताऊं। क्षण भर बाद वह उतर कर मंच से चला गया। मस्जिद के लोगों ने कहा कि यह तो बड़ा धोखा हो गया। जानता तो कोई भी न था। सब ज्ञानी थे। लेकिन जानता कोई भी न था। उन्होंने कहाः गलती हो गई, हमें क्या पता था कि यह आदमी इस तरह कर देगा। और फिर कुछ कहने को भी न बचा, जब कहा कि जानते ही हैं, तो उसने कहा परमात्मा के ऊपर तो न

बताने को कुछ है, न जानने को कुछ। नमस्कार करता हूं तुम सब ज्ञानियों को और वह चला गया।
उन्होंने कहाः लेकिन इसको छोड़ना नहीं है। दूसरे शुक्रवार को फिर पहुंच गए और उन्होंने कहाः चलिए, समझाइए। उसने कहा कि मैं गया था पिछली बार। उन्होंने कहाः हम दूसरे लेग हैं, हम वे लोग नहीं। उस फकीर ने कहा कि धार्मिक आदमी का कभी कोई भरोसा नहीं। तुम यह कहते हो? मैं लोगों को अच्छी तरह पहचानता हूं, छोटी सी मस्जिद है और छोटा सा गांव है। लेकिन धार्मिक आदमी कभी भी बदल जाए। अभी गीता पढ़ रहा है, छुरा घोंप दे अभी, कुछ पक्का नहीं। अभी कुरान पढ़ रहा है, अभी किसी के घर में आग लगा दे, कुछ पक्का पता नहीं। जिसको हम धर्मिक आदमी कहते हैं उससे ज्यादा लचर और कमजोर और बेईमान आदमी इस पृथ्वी पर है ही नहीं। जिसको हम धार्मिक कहते हैं उसका कोई भरोसा नहीं। उस फकीर ने कहा कि ठीक है, मैं तुम्हारी शक्लें भी जान रहा हूं, एक ही तो मस्जिद है। उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, मस्जिद तो वही है लेकिन हम दूसरे लोग हैं, आप चलें।
वह फकीर गया। मंच पर खड़ा हुआ। आज और भीड़ बढ़ गई। क्योंकि लोग उत्सुक हैं, उन्होंने तय कर लिया है। फकीर ने कहाः ईश्वर है, मानते हैं? उन्होंने कहाः कैसा ईश्वर? हम नहीं मानते, न हम जानते हैं। अब बोलिए। उसने कहाः जो है ही नहीं उसके संबंध में क्या कहूं। उसने कहाः जो है ही नहीं उसके संबंध में व्यर्थ मेहनत क्यों करनी। किस ईश्वर के संबंध मे पूछ रहे हो जो है ही नहीं उसके संबंध में? उसने कहाः तुम लेकिन फिर भी ज्ञानी हो, तुमने इतना तक पता लगा लिया कि ईश्वर नहीं है। पहले जब आया था तब भी ज्ञानी मिले थे, उन्होंने यह पता लगा लिया था कि ईश्वर है। और तुम भी ज्ञानी हो तुमने यह भी पता लगा लिया कि वह नहीं है। खोज चुके तुम सब, नहीं पाया कहीं, देख लिया तुमने अस्तित्व का कोना-कोना, नहीं मिला वह, नमस्कार है, मैं जाता हूं।
वह मस्जिद चुप रह गई। उन्होंने कहाः यह अजीब आदमी है। हमने सोचा था वह उत्तर काम न दिया तो उलटा उत्तर काम दे जाएगा। अक्सर लोग यही सोचते हैं कि अगर यह उत्तर काम न दिया तो उलटा उत्तर काम दे जाएगा। लेकिन ध्यान रहे, गलत उत्तर का ठीक उलटा भी गलत ही होता है, ठीक नहीं हो जाता। उन्होंने कहाः कुछ रास्ता मध्य का निकालना पड़ेगा। उन्होंने फिर फकीर से प्रार्थना की कि चलें आप। अब कि बार उसने न पूछा कि तुम कौन हो, क्योंकि पूछना फिजूल था। वह चला आया। मस्जिद के लोगों ने उत्तर तय कर लिया था। जब विवाद होता है तो फिर रेसिस्टेंस फैल जाता है, उसको कुछ लोग समन्वय कहते हैं, कुछ लोग समझौता कहते हैं। उन्होंने तय कर लिया। अल्लाह-ईश्वर वाले लोग थे, कि अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम। फिर ऐसा कुछ रास्ता निकालना पड़ता है। वह निकाल लिया था उन्होंने। उसने फिर पूछा कि ईश्वर है? तो मस्जिद के आधे लोगों ने कहा कि हां है और आधे लोगों ने कहा कि नहीं, अब आप बोलिए। तो उसने कहाः तुम बड़े पागल हो! जिनको पता है वह उनको बता दे जिनको पता नहीं है, मेरी क्या जरूरत है? मेरी कोई भी जरूरत नहीं। तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो? उस फकीर ने कहाः इस मस्जिद में दोनों लोग मौजूद हैं, जिनको पता है और जिनको पता नहीं है। आपस में, कृपा करके मेरी तरफ चेहरा न करके आधे लोग इधर को चेहरा कर लें, आधे लोग उधर को, और मुझे रास्ता दें-दें मैं चला जाता हूं।
फिर मस्जिद के लोग चौथी दफा नहीं गए। क्योंकि चौथा उत्तर ही नहीं खोज पाए। तीन उत्तर ही हो सकते थे। फकीर कई दिन रुका रहा और बार-बार उन लोगों से पूछता कि अब नहीं आते? तो लोग बच कर निकल जाते। फिर तो गांव वाले उस फकीर से डरने लगे। क्योंकि जहां भी वह मिल जाता वह पूछता कि क्यों अब नहीं आते? अब गांव के लोग बड़े परेशान हो गए। क्योंकि अब कोई चौथा उत्तर नहीं है। जो उत्तर हो सकते थे दे दिए थे। फिर किसी ने उसके पास जाकर पूछा कि अगर हम आएं, अगर हम आएं चौथी बार तो आप उत्तर दोगे? तो उसने कहाः मैं फिर पूछूंगा। उसने कहाः वही तो मुश्किल हो गई, इसलिए तो हम बुलाने नहीं आ पाते। लेकिन क्या हम आएं तो आप उत्तर दोगे? उसने कहा। मैं तो चलूंगा लेकिन जब तक तुम मुझे ठीक उत्तर न दोगे तब तक मैं भी आगे नहीं बढ़ूंगा। उन्होंने कहा कि ठीक उत्तर पता ही नहीं। उस फकीर ने कहा कि ठीक उत्तर बिल्कुल पता है लेकिन बेईमान हो, ठीक उत्तर तुम इसलिए नहीं दे पा रहे। तो क्या है ठीक

उत्तर? उस फकीर ने कहा कि मैं पूछूं और तुम चुप रह जाओ, जब पता नहीं तो तुम बोलते क्यों हो? यह भी कहना कि है ईश्वर उत्तर है, यह भी कहना की नहीं है ईश्वर उत्तर है, यह भी कहना की हम आधों को पता है आधों को पता नहीं। लेकिन तुम यह क्यों नहीं कहते कि हम कैसे उत्तर दें हमें तो कुछ भी पता नहीं है। होना भी पता नहीं, न होना भी पता नहीं है।
ऐसे आदमी को मैं कहता हूं कि ऐसा आदमी यात्रा पर निकल सकता है, जो यह कहता है मुझे कुछ भी पता नहीं है। जो कहता है कि मैं तो परम अज्ञानी हूं मुझे कुछ भी पता नहीं है। लेकिन हम कैसे कहें कि हम परम अज्ञानी हैं? हमने शास्त्र याद कर लिए हैं, हमने उधार ज्ञान इकट्ठा कर लिया है, हम कैसे कहें की हम अज्ञानी हैं? हमें पता है कृष्ण ने क्या कहा, मौहम्मद ने क्या कहा, हमें सब पता है।
नहीं, मैं ज्ञान की बात नहीं किया, क्योंकि ज्ञान की बात अक्सर कोरे ज्ञान की बात हो जाती है। और ज्ञान की बात अक्सर उधार ज्ञान की बात हो जाती है। और ज्ञान की बात अक्सर संग्रह हो जाता है दूसरों का, अपना कुछ भी नहीं। कभी आपने शायद खयाल न किया हो, आप कभी दूसरों के प्रेम से तृप्त नहीं होते लेकिन दूसरों के ज्ञान से तृप्त हो जाते हैं। अगर मैं आपसे आकर कहूं कि तुम क्यों प्रेम के चक्कर में लगे हो, मैंने प्रेम कर लिया है। तो आप कहेंगे, आपने कर लिया होगा लेकिन इससे मुझे क्या, मुझे तो खुद करना पड़ेगा। कभी हम दूसरे के प्रेम से तृप्त नहीं होते। इसलिए वह उधार प्रेम जैसी चीज होती ही नहीं। प्रेम प्रत्येक व्यक्ति अपना ख्ल्लजता है निजी, ऑथेंटिक, प्रामाणिक। वह कहता है कि किया होगा आपने। बाप बेटे से कितना ही कहे कि मैं कर चुका प्रेम, अब तुम इस चक्कर में मत पड़ो, तो बेटा कहेगा, आपने किया होगा, लेकिन कृपा करके मुझे इस चक्कर में पड़ने दें, मैं भी जानना चाहता हूं, क्योंकि दूसरे ने किया है वह मैं कैसे जान सकता हूं?
लेकिन ज्ञान उधार हो जाता है अक्सर, हम किताब से पढ़ कर ज्ञान तो ले सकते हैं, लेकिन किताब से पढ़ कर प्रेम नहीं ले सकते। अब तक कोई आदमी नहीं ले सका। नहीं तो कई किताबें प्रेम पर लिखी जाती हैं, उनको पढ़ लें, बात खत्म हो जाती। प्रेम पर कभी भी हम दूसरे से उधारी स्वीकार नहीं करते, ज्ञान में उधारी स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए मैं ज्ञान की बात नहीं करता।
परमात्मा उधार नहीं जाना जा सकता, स्वयं ही जानना पड़ेगा। इसलिए मैं कहता हूंः प्रेम ही रास्ता है। और जब मैं कहता हूं प्रेम ही रास्ता है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कोई ज्ञान का विरोधी हूं। मैं यह कह रहा हूं कि प्रेम भी जानने का गहरे से गहरा रास्ता और ढंग है, वह भी ए मैथड ऑफ नोन। जब हम किसी को प्रेम करते हैं तभी हम जान पाते हैं। अब इस जानने में भी बहुत फर्क है। एक वनस्पति शास्त्री, उसको फूल के पास ले जाएं, वह भी जान लेगा फूल को, लेकिन उसका जानना बहुत और ढंग का होगा। वह कहेगा, इसमें कितने केमिकल्स हैं? यह किस जाति का पौधा है? इसमें कितने खनिज हैं? यह कैसे बना है? यह क्या है, क्या नहीं? वह सब जान लेगा। एक कवि को ले जाएं उसी फूल के पास, वह न खनिज की बात करेगा, न केमिकल्स की बात करेगा, न पौधे की जाति की बात करेगा, वह भी जानेगा उस फूल को, लेकिन उसका जानना बहुत और ढंग का होगा। वह उस फूल के आस-पास नाच सकता है, गीत गा सकता है, मुक्त होकर डूब सकता है। एक कवि भी जानेगा, लेकिन उसके जानने का ढंग प्रेम होगा। एक वैज्ञानिक भी जानेगा, लेकिन उसके जानने का ढंग प्रेम नहीं होगा।
परमात्मा को वैज्ञानिक ढंग से नहीं जाना जा सकता, इसलिए मैंने ज्ञान
की बात नहीं की। परमात्मा को लेबोरेटरी में पकड़ कर कोई टेस्टट्यूब में नहीं जाना जा सकता। कोई रास्ता नहीं है। उसकी बड़ी कृपा है कि वह टेस्टट्यूब की पकड़ में नहीं आता है। इसलिए वैज्ञानिक कहे जाता है कि नहीं है परमात्मा, नहीं है परमात्मा। उसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा नहीं है, उसका कारण यह है कि वैज्ञानिक की जो विधि है, जो मेथडोलॉजी है वह परमात्मा को पकड़ने वाली नहीं है। उसमें परमात्मा का कसूर नहीं है। वह जिस ढंग से उसको जांचना चाहता है उसमें पत्थर ही पकड़ में आ सकते हैं, उसको परमात्मा पकड़ में नहीं आ सकता।

अगर वह फूल को जांचने जाएगा तो सौंदर्य पकड़ में नहीं आएगा, खनिज और रसायन सब पकड़ में आ जाएगी, पर सौंदर्य भर छूट जाएगा। सौंदर्य को पकड़ना हो तो कवि की आंख चाहिए; कोई प्रेमी की आंख जो प्रेम कर सके। और जब कोई फूल को प्रेम करता है तो ही जानता है। लेकिन वह जानना एक बहुत मिस्टिक पर्टिसिपेशन है, वह एक बहुत रहस्यमय ढंग से फूल के साथ एक हो जाना है। वह इतना एक हो जाए कि खयाल भी नहीं रहे कि मैं...
मैं एक घटना से समझाऊं फिर मैं एक दूसरा सवाल लूं।
रामकृष्ण एक दिन नदी पार कर रहे थे। नाव पर बैठे हैं, दस-पांच मित्र बैठे हैं। अचानक बीच नाव पर रामकृष्ण चिल्लाते हैं, मत मारो मुझे, क्यों मारते हो? उनके मित्रों ने चौंक कर कहा कि आप यह क्या कहते हैं? जैसे मैं यहां बैठ कर चिल्लाऊं तुमसे कि मत मारो मुझे, क्यों मारते हो और आप कहेंगे कि बात क्या है? रामकृष्ण के मित्रों ने कहाः आप क्या कहते हैं? कौन आपको मार सकता है? कौन आपको मार रहा है? और रामकृष्ण हैं कि चल्लाए चले जा रहे हैं कि मत मारो, मत मारो। वे अपनी चादर उठा कर दिखाते हैं वहां, तो कोड़े के निशान हैं और लहू उभर आया है। मित्र कहते हैंः क्या मामला है? तब रामकृष्ण हाथ उठाते हैं नदी के उस तट पर, एक मल्लाह को कुछ लोग पीट रहे हैं। फिर नाव उस तट जाकर रुकती और वे मित्र जाकर उस मल्लाह की चादर उठा कर देखते हैं, उसकी पीठ पर जहां निशान हैं ठीक वहीं रामकृष्ण की पीठ पर निशान हैं। यह घटना बहुत पुरानी नहीं है। यह घटना बहुत नई है। इसके चश्मदीद गवाह हैं। क्या हुआ क्या? ये कोड़े के निशान रामकृष्ण की पीठ पर आए कैसे? यह किसी गहरे पर्टिसिपेशन में, यह किसी गहरे एकात्मभूति में, एक अनुभव में घटित हो गया। जब वह पीट रहा है तब तो रामकृष्ण को ऐसा नहीं लगा कि उसे क्यों मार रहे हो, जो उन्हें एकदम से यह खयाल आ गया कि मुझे क्यों मार रहे हो? तो दोनों के प्राण किसी बहुत गहरे अदृश्य में मिल गए और चोट के निशान रामकृष्ण तक पहुंच गए। लेकिन यह पूरब की घटना है इसलिए पश्चिम विश्वास नहीं करेगा। और रामकृष्ण की घटना है इसलिए वैज्ञानिक विश्वास नहीं करेगा।
मैं एक और घटना बताना चाहता हूं।
उन्नीस सौ छत्तीस में अमरीका में एक आदमी था, लूथर दरबांग। वह नोबल प्राइज विनर था। वह कोई रामकृष्ण जैसा अपढ़ संन्यासी नहीं था। और न रामकृष्ण जैसा कोई पागल आदमी था। लूथर दरबांग नोबल प्राइज विनर था। लूथर दरबांग ने जिंदगी भर पौधों के पास ही अपनी जिंदगी बिताई। वह पौधों की खोज ही करता रहा। उसकी खोज इतनी बढ़ गई और उसका पौधों से इतना संबंध हो गया कि उसकी पत्नी उसे छोड़ कर चली गई। उसने कहा कि क्या पागलपन मचा रखा है, मैं बैठी हूं और तुम अपने पौधों से बात कर रहे हो, तुम्हारा दिमाग ठीक है? लूथर दरबांग पौधों से बात करने लगा। अब यह पागलपन का लक्षण है। उसका पौधों से प्रेम हो गया। वह पौधों से बात-चीत, हाल-चाल पूछने लगा, सुबह उठ कर पौधों से कि कहो कैसे हो, कल तबीयत खराब थी, ठीक है न? तो पत्नी तो, ऐसे पति के पास पत्नी रुके? वह गई, उसने कहा कि यह क्या पागलपन है? मुझसे तो कभी पूछते नहीं हो कि तबीयत कैसी है पौधे से तुम पूछ रहे हो? पौधों से पूछने का मतलब? मित्रों ने दरबांग को समझाया कि मालूम होता है तुम्हारा दिमाग खराब हुआ जा रहा है। मालूम होता है ज्यादा दिमाग से श्रम करने के कारण तुम पागल हुए जा रहे हो।
दरबांग ने कहाः दिमाग से काम बंद हो गया है। अब मैं पूरे प्राणों से काम कर रहा हूं। लेकिन कौन माने। तो दरबांग ने कहा कि कैसे तुम मानोगे? लेकिन उसने कहाः तुम सोचते हो? मित्रों ने कहाः सोचते हो, पौधे तुम्हारी सुनते हैं? तो दरबांग ने कहा कि सुनते हैं। क्योंकि पौधों ने मुझे नमस्कार दी है। जब मैंने पौधों से कहाः कैसे हो? तो पौधों ने कहाः ठीक हैं, खुश हैं। मित्रों ने कहाः हमने तो कभी नहीं सुना। अब तो पक्का है कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। तुम कोई प्रमाण दे सकते हो? दरबांग ने एक प्रमाण दिया जो अमरीका में घटित हुआ। और वह प्रमाण बहुत अदभुत था।
दरबांग एक कैक्टस के पौधे के पास सात साल तक मेहनत करता रहा। और उस कैक्टस के पौधे में बिना कांटे की डाल नहीं होती, शाख नहीं होती। वह उस पौधे से रोज कहता कि कृपा कर और एक ऐसी शाखा निकाल दे जिसमें कांटे न हों

ताकि मित्रों को भरोसा आ जाए कि तूने मेरी सुन ली। सात साल, असल में सात साल सिर्फ प्रेम ही इस तरह के प्रयोग कर सकता है। क्योंकि प्रेम बिल्कुल पागल है न। इतना सात साल तक कौन करेगा? सात दिन मुश्किल, सात मिनट मुश्किल है। सात दिनों में यह भरोसा आ जाएगा कि यह नहीं होने वाला। लेकिन दरबांग सात साल तक कहता रहा कि तू कृपा कर और एक शाखा निकाल दे जिसमें कांटे न हों, ताकि मैं भरोसा दिला दूं कि इसने मेरी सुन ली। और सात साल बाद उस पौधे में एक शाखा आ गई जिसमें कांटे नहीं थे। अब दरबांग वैज्ञानिक न रहा प्रेमी हो गया।
अब दरबांग परमात्मा को जान सकता है। प्रेम ही जानने का एक गहरा ढंग है। और जिसको हम ज्ञान कहते हैं वह ऊपर-ऊपर घूमता है। और जिसको हम प्रेम कहते हैं वह भीतर प्रवेश कर जाता है। जब हम एक व्यक्ति को जानने जाते हैं तो हम उसके चारों तरफ घूमते हैं।
अंग्रेजी में एक शब्द है एक्वेंटेंस, परिचय। जब हम एक आदमी को जानते हैं तो हम उसके आस-पास घूमते हैं, हम पूछते हैं, तुम्हारे पिता का नाम क्या है? तुम्हारी तनख्वाह क्या है? कहां रहते हो? यह सब आस-पास घूमना है। इसमें उस व्यक्ति के बाबत कुछ नहीं। पिता कौन है? नौकरी क्या है? घर कहां है? गांव क्या है? जाति क्या है? धर्म क्या है? हम उसके आस-पास घूम रहे हैं। हम उसके आस-पास चक्कर लगा रहे हैं। यह एक्वेंटेंस, परिचय है। लेकिन उस व्यक्ति से आपका प्रेम हो जाए तो पिता कौन कोई मतलब नहीं। जाति कौन कोई मतलब नहीं। कभी किसी ने पूछ कर प्रेम किया है कि मुसलमान हो तब प्रेम करेंगे, कि हिंदू हो तब प्रेम करेंगे। नहीं, प्रेम हो जाए तो सीधा हम उस व्यक्ति से संबंधित हो जाते हैं। न हम पूछते हैं कि पिता कौन है, न जाति, न धर्म, न ठिकाना, न पता, सब खत्म, सीधे प्रवेश कर जाते हैं उस व्यक्ति में। उस व्यक्ति से ही जुड़ जाते हैं।
प्रेम ही जानने का गहरा ढंग है। सच तो यह है कि प्रेम ही जानने का गहरा ढंग है। प्रेम ही ज्ञान है। और प्रेम के अतिरिक्त जो ज्ञान है वह सब उधार, बासा है। जिन्होंने जाना है उन्होंने प्रेम से जाना है। और वह प्रेम से जाने हुए लोगों की बातों को जो दोहरा रहे हैं उन्होंने जाना नहीं है। इसलिए मैंने ज्ञान की बात नहीं की, लेकिन जो समझेंगे वे समझ जाएंगे की मैंने ज्ञान की ही बात की।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं परमात्मा सबमें हैं। तो फिर कुछ लोग बुरे क्यों हो जाते हैं? फिर कुछ लोग गलत रास्ते पर क्यों चले जाते हैं?

जब हम बात करते हैं कि परमात्मा सबमें है, तो हमें एक भूल हो जाती है।
और वह भूल यह हो जाती है, जैसे हम कहते हैं, गिलास में पानी है, तो हमारा, जब हम कहते हैं कि गिलास में पानी है, तो गिलास अलग होता है, पानी अलग होता है। और जब हम कहते हैं, सबमें परमात्मा है, तो हम इसी तरह सोचते हैं कि हम भी कुछ हैं और हममें से परमात्मा भी है। न, ऐसा नहीं है, कि जब हम कहते हैं, सबमें परमात्मा है; जब हम ऐसा कहते हैं, सबमें परमात्मा है, तो उसका मतलब है परमात्मा ही है और कोई नहीं है। जब मैं कहता हूं कि मुझमें परमात्मा है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अलग हूं और मेरे भीतर कोई परमात्मा है। जब मैं कहता हूं, मुझमें परमात्मा है, यह सब भाषा की भूल है। जब मैं यह कहता हूं कि सबमें परमात्मा है, तो इसका मतलब सिर्फ यह है कि या तो मैं ही हूं या परमात्मा ही है, एक ही है, जिसके दो नाम हैं। आप मैं की तरह जानते हैं, वह परमात्मा की तरह है। दो नहीं है।
वे पूछ रहे हैं कि जब सबमें परमात्मा है... ?
इसको ऐसा न पूछें, इसको ऐसा कहेंः जब सभी परमात्मा है, तो फिर लोग बुरे क्यों हो जाते हैं?
यह बहुत पुराना सवाल है। सदा से आदमी को परेशान करता रहा है। और हल नहीं हो पाता। क्योंकि हम, हम सवाल की गहराई में नहीं उतर पाते। जब हम पूछते हैं कि परमात्मा सब परमात्मा ही है, तो फिर एक आदमी चोर और डाकू और

रावण क्यों हो जाता है? और एक आदमी राम क्यों हो जाता है? तो इसका सिर्फ मतलब इतना है कि परमात्मा पर कोई बंधन नहीं है। परमात्मा परम स्वतंत्र है। वह रावण भी हो सकता है, राम भी हो सकता है। यह परमात्मा की परम स्वतंत्रता का सबूत है कि वह चाहे तो रावण भी हो सकता है और वह चाहे तो राम भी हो सकता है। और अगर ऐसा होता जैसा कि प्रश्न में छिपा है, कि सब लोग अच्छे होने को मजबूर होते तो अच्छाई बड़ी बेईमानी, बड़ी बोर्डम, बड़ी ऊबाने वाली होती।
अगर एक आदमी राम होने को मजबूर हो, तो राम होने का मजा चला जाए। राम होने का मजा इसीलिए है कि राम होने की संभावना है। अगर एक आदमी को अच्छा होना ही पड़े, बुरे होने का उपाय ही न रहे, तो अच्छे होने में कोई अर्थ ही न रह जाए। अच्छे होने का अर्थ ही इसलिए है कि बुरे होने का उपाय है। और यह मेरी स्वतंत्रता है कि मैं चाहूं तो बुरा और चाहूं तो अच्छा। और मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। क्योंकि मैं ही परमात्मा हूं। मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है कि कोई मुझे रोक सके कि तुम्हें अच्छा ही होना पड़ेगा। नहीं, मैं बुरा भी हो सकता हूं। और ध्यान रहे, जो आदमी कभी ठीक से बुरा नहीं हुआ वह ठीक से अच्छा नहीं हो पाता। असल में ठीक से अच्छे होने के लिए ठीक से बुरे होने का अनुभव बहुत जरूरी है। इतना ज्यादा जरूरी है जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि अच्छे होने की जो गहराई है और अच्छे होने का जो रस है वह बुरे होने की पीड़ा और दुख से आता है।
एक छोटी सी कहानी से समझाऊं तो खयाल में आ जाए।
एक आदमी बहुत धनपति है, बहुत अरबपति है। वह सुख की खोज में है। सुख नहीं मिला है। वह अपने घोड़े पर एक बहुत बड़ी थैली में बहुत हीरे-जवाहारात भर कर सुख की खोज में निकला कि जो मुझे सुख दे दे उसे मैं सब हीरे-जवाहारात दे दूं। करोड़ों की संपत्ति लेकर वह गया। गांव-गांव भटक रहा है लेकिन कौन सुख दे दे? सुख कौन दे दे? जहां भी गया है लोगों ने बातचीत की लेकिन सुख कोई नहीं दे पाया। उसने कहा कि यह रही संपत्ति, मैं देता हूं, लेकिन सुख चाहिए। जरा सा सुख दे दो, यह सब ले लो। लेकिन कोई नहीं मिला। फिर किसी ने कहा कि आपको तो सिर्फ एक आदमी सुख दे सकता है, वह एक फकीर है फलां-फलां गांव में, वहां आप चले जाइए। उसने कहाः वह क्यों दे सकता है? उसने कहाः वह फकीर जरा अजीब ढंग का है। वह दे सकता है। और कोई आपको नहीं दे सकता।
वह गया उस गांव में, गांव के बाहर गया। वह फकीर एक झाड़ के नीचे बैठा है। सांझढल रही है, सूरज उतर रहा है, अंधेरा उतरने के करीब है। उसने जाकर घोड़े से उतर कर वह करोड़ों रुपये के हीरे-जवाहारात नीचे रख दिए और फकीर से कहा कि तेरे पीछे परेशान हो रहा हूं, मेरे पास सब है, सुख नहीं है, मुझे सुख चाहिए। यह सारी संपत्ति दे सकता हूं। एक झलक मिल जाए सुख की मुझे।
उस फकीर के कहाः सच? वह फकीर उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा, दे दूं सुख?
उस आदमी ने कहाः दें। वह आदमी खुद भी थोड़ा हैरान हुआ। क्योंकि कई लोगों के पास गया था, थैली पटकी थी कई के सामने, पर वे कहने लगे, सुख हम कैसे दे सकते हैं? उस फकीर ने कहाः दे दूं, सच में दे दूं? उसने कहाः दें, मैं इसलिए तो फिर रहा हूं। लेकिन जब तक उसने कहा कि दे दूं फकीर उसकी थैली लेकर भाग खड़ा हुआ। उसकी तो समझ ही नहीं आया एक क्षण के लिए क्या हो रहा है। फिर वह चिल्लाने लगा, अरे मैं लुट गया, मैं मर गया। तू आदमी कैसा है? तू परमज्ञानी, मैंने सुना था। लेकिन वह तो भाग ही गया। वह तो भागे ही चला जा रहा है। फिर वह घोड़े को छोड़ कर अमीर भागा उसके पीछे। फकीर को गांव परिचित है, रात उतर आई है, गली-गली में वह चक्कर काट रहा है। और वह आदमी चिल्ला रहा है कि मैं लुट गया, मैं मर गया। उसकी आंखों के सामने सारी जिंदगी की संपत्ति चली गई। सुख तो न मिला लेकिन दुख मिल गया। और यह आदमी कैसा धोखेबाज है? इसको पकड़ो। यह चोर है, यह बेईमान है। सारा गांव दौड़ रहा है, सारा गांव जग गया है। वह फकीर को तो रास्ते परिचित हैं, यह आदमी अजनबी है तो उसको पकड़ नहीं पा रहा है।
फिर वह फकीर वापस अपने उसी झाड़ के नीचे लौट आया जहां वह घोड़ा खड़ा है। उसने वह थैली पटक दी और झाड़ के पीछे छिप गया। वह आदमी पीछे से हांफता हुआ, रोता-चिल्लाता हुआ भीड़ के साथ आया। थैली उठा कर उसने भगवान से कहा कि

भगवान, धन्यवाद! फकीर पीछे से निकला और उसने कहाः थोड़ा सुख मिला? उस फकीर ने कहाः यही एक रास्ता है सुख पाने का। थोड़ा मिला? बोलाः मिला? उस आदमी ने कहाः मिला। क्योंकि दुख की यात्रा हो गई तो सुख मिल सका।
परमात्मा भी है सबके भीतर, लेकिन भीतर के परमात्मा को भी भटकना पड़ता
है तभी वह ठीक जगह आता है। कोई भटकाता नहीं, हम भटकते हैं। यह हमारी स्वतंत्रता है। बुराई में भी हम जाते हैं, वह भी हमारी स्वतंत्रता है। नरक की गहराइयों में तपते हैं, वह भी हमारी स्वतंत्रता है। स्वर्ग की ऊंचाइयों में उठते हैं, वह भी हमारी स्वतंत्रता है। और जब स्वर्ग और नरक दोनों में कोई आदमी घूम चुका होता है, सुख और दुख दोनों में घूम चुका होता है, तब एक नई यात्रा शुरू होती है जो आनंद की यात्रा है। वहां न सुख है, न दुख है। ये इतनी सारी यात्राएं करनी पडती हैं। कोई करवा नहीं रहा है, हम कर रहे हैं, क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त कोई है ही नहीं।
जब मैं कहता हूं, सबके भीतर परमात्मा है, मैं यह कह रहा हूं, सब परमात्मा हैं। और परमात्मा ही यात्रा कर रहा है, खोज रहा है, खोज रहा है, खोज रहा है और पहुंच रहा है। कोई बुरा नहीं करवा रहा है किसी से। इसलिए बुराई का भी अर्थ है इस जगत में। अंधेरे का भी अर्थ है इस जगत में। क्योंकि प्रकाश अंधरे के कारण ही दिखाई पडता है। बुरे आदमी का भी अर्थ है। कभी सोचें, अगर राम न हों, जैसा कि हम सोचते हैं कि रावण नहीं होना चाहिए। तो यह कभी खयाल किया कि अगर रावण न हो तो राम के होने में बड़ी मुश्किल हो जाएगी। यह बड़े मजे की बात है कि रावण तो राम के बिना भी हो सकता है, लेकिन राम रावण के बिना नहीं हो सकते। यह बहुत अजीब बात है कि राम न भी हो तो रावण के होने में कोई खास बाधा नहीं पड़ती। रावण हो सकता है, लेकिन रावण न हो तो राम के होने में बड़ी बाधा पड़ जाती है। उसका कारण है। कि बुरा जो है वह प्राथमिक अनुभव है, भला जो है वह ऊपर का अनुभव है। मंदिर बनाते हैं, शिखर चढ़ाते हैं सोने का, नींव भरते हैं पत्थर की, तो नींव भर कर अगर आप शिखर न चढ़ाएं तो चल जाएगा। नींव हो सकती है बिना शिखर के, लेकिन शिखर बिना नींव के नहीं हो सकता। जो नीचा है वह ऊपर के बिना हो सकता है, लेकिन जो ऊपर है वह नीचे के बिना नहीं हो सकता। आपके मकान के ऊपर की मंजिल नीचे की मंजिल के बिना नहीं हो सकती, लेकिन नीचे की मंजिल बिना ऊपर की मंजिल के हो सकती है, इसमें कोई बाधा नहीं।
आदमी की बुराई का अस्तित्व हो सकता है भलाई के बिना, लेकिन भलाई का अस्तीत्व नहीं हो पाता बुराई के बिना। जिंदगी में जो नीचे है वह प्राथमिक है, जो ऊंचा है वह श्रेष्ठ है, इसीलिए ऊपर है।
मंदिर का शिखर अकेला नहीं हो सकता। राम अकेले नहीं हो सकते। राम के लिए बुनियाद में रावण के पत्थर चाहिए। रावण राम के बिना हो सकता है। उसके लिए राम के शिखर की बहुत जरूरत नहीं है।
एक वृक्ष हम लगाएं, हम वृक्ष को काट दें, तो जड़ें हो सकती हैं बिना वृक्ष के। बिना फूलों के जड़ें हो सकती हैं, लेकिन फूल बिना जड़ों के नहीं हो सकते। हम जड़ें काट दें, तो फूल मर जाएंगे, लेकिन हम फूल काट दें तो जड़ें नहीं मर जाएंगी, जड़ें नये फूल निकल कर पहुंचा देंगी।
जिंदगी के गहरे रहस्यों में एक रहस्य यह है कि जो नीचा है, जो बुरा है,
जो अंधेरा है, वह प्राथमिक है। और जो श्रेष्ठ है, उज्जवल है, शुभ है, वह अंतिम है। और नीचे की भी जरूरत है ताकि ऊपर का हो सके। इसलिए मैं कोई बुराई के विरोध में नहीं हूं। बुराई के विरोध में हूं तो सिर्फ इस अर्थ में कि बुराई पर ही रुक मत जाना। बुराई करना जरूर, रुक मत जाना। नींव भरना जरूर, लेकिन नींव पर रुक मत जाना, नहीं तो बेकार में रहोगे। अकेली नींव का क्या करिए? जड़ें लगाना जरूर, लेकिन जड़ों पर ही मत रुक जाना, वर्ना जड़ों का कोई मतलब नहीं। बुरा होना, लेकिन बुराई पर रुक नहीं जाना, शुभ तक पहुंच जाना। रावण से यात्रा शुरू होती है, राम पर पूरी होती है। और रावण भी राम हैं
और राम भी रावण हैं। और रावण भी प्रभु है और राम भी प्रभु है। हां, इतना ही फर्क है कि रावण जरा पगडंडी से उतर कर चले गए परमात्मा हैं, जरा रास्ते से उतर कर चले गए हैं। और राम पक्की सड़क पर चलने वाले परमात्मा है, वे पगडंडी से नीचे नहीं उतरते, वे ठीक रस्ते से चले जा रहे हैं। बस इतना ही फर्क है

उसमें, कोई ज्यादा फर्क नहीं है। जो पगडंडी से उतर कर चला गया है वह थोड़ी देर में लौट आएगा। आज नहीं कल वह भी पक्के रास्ते पर आगे चलने लगेगा। यह हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए। बुरा आदमी इस बात का सबूत नहीं है कि उसके भीतर भगवान नहीं है। बुरा आदमी इसी बात का सबूत है कि उसके भीतर जरा विद्रोही भगवान हैं, जरा रिबेलियस। वे कहते हैं कि ठीक है, तुम्हारी बंधी हुई लीक से हम न चलेंगे, हम जरा इधर से जाएंगे। और कोई रोकने वाला नहीं है, जा सकते हैं। परम स्वतंत्रता है परमात्मा की। और इसमें सब तरफ जाया जा सकता है।
और ध्यान रहे, सौभाग्य है कि इससे उलटा नहीं, अगर ऐसा होता कि बंधी हुई लीक होती तो इस पर चलना ही होगा, उस पर पहुंचना ही होगा, तो जिंदगी बिल्कुल बेमानी, अर्थहीन हो जाती। हम एकदम आत्महत्या कर लेते, जिंदगी जीने हेतु न रह जाती। एकाध दफा रामलीला खेल कर देखें बिना रावण के, बहुत मुश्किल हो जाए।
एक दफा मैंने सुना है, एक गांव में ऐसी ही गड़बड़ हो गई। रामलीला शुरू हुई। सीता का स्वयंवर रचा गया। जो लड़की सीता बनी थी उसका प्रेमी रावण बना दिया। तो जब स्वंयवर रचा गया और बाहर से आवाजें आईं कि रावण तेरी लंका में आग लगी है, तो उसने कहा कि लगी रहने दो, आज तो मैं स्वयंवर पूरा करके ही जाऊंगा। अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। क्योंकि रावण हटे तो स्वयंवर हो। लेकिन उसके पहले भी कुछ सोचा-समझा जा सके वह रावण उठा और उसने धनुषबाण शंकर जी का उठा कर तोड़ दिया। धनुषबाण तो कोई दिक्कत थी नहीं तोड़ने की, तो तोड़ दिया उसने, उसने कहा कि जनक ला तेरी सीता को, कहां है? तो सब बात अटक गई। अब राम ने कहा कि मामला आगे खतम हुआ जाता है। वह तो जो जनक बना था वह आदमी बुद्धिमान था। उसने नौकरों से कहाः मालूम होता है तुम गलत धनुषबाण उठा आए हो, यह बच्चों का खेलने का धनुषबाण है, शंकर जी का धनुषबाण लाओ। और जैसे ही कैसे करके रावण को भगाया बाहर। यह तो बहुत मुश्किल की बात है, यह आदमी तो रामलीला खत्म किए देता है। सो आगे कोई उपाय नहीं रह जाएगा।
तो रावण के बिना रामलीला नहीं है। जिसको ऐसा दिखाई पड़ जाता है जिंदगी में वह जो बुरा है वह भी जीवन का अर्थ है। और जीवन में जो अंधेरा है वह भी जीवन का अर्थ है। वह जो जीवन में नीचे से होकर के चला गया है वह भी रास्ते पर चलने वाले लोगों के पैर की ताकत, जिस दिन विरोध इस भांति एक ही दिखाई पड़ता है, राम और रावण एक ही खेल को दो पात्र दिखाई पड़ते हैं, उस दिन जिंदगी एक लीला हो जाती है। इसलिए तो हम उसको रामलीला कहते हैं। और कोई कारण नहीं है। लीला का मतलब हैः जस्ट ए प्ले। लीला का मतलब है कि यह बहुत सच्ची बात नहीं है--कहानी है, खेल है। इसलिए हम कहते हैं कि यह लीला है। यह सारा जगत एक लीला है। लीला का मतलबः एक खेल है। इसमें कुछ बहुत गंभीरता से पकड़ लेने की जरूरत नहीं है कि यह बहुत बुरा है और यह अच्छा है। इसमें बुरा अच्छा का आधार है, इसमें अच्छा बुरे का आधार है। इसमें दोनों साथ हैं और दोनों खेल रहे हैं। तो यह एक खेल है। इसलिए जिनको हम धार्मिक अनुभूति उपलब्ध लोग कहें उन्होंने जगत को लीला कहा है।
एक अंतिम बात और फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूं।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कुछ ऐसी बात करते हैं कि न कोई प्रयोजन चाहिए, न कोई लक्ष्य चाहिए, बस जीवन में बह जाना चाहिए। तो आप क्या उपदेश से हंसना सिखाते हैं लोगों को?

निश्चित ही सिखाता हूं। क्योंकि मेरी समझ यह है कि जीवन एक खेल है, एक लीला है, उसे बहुत गंभीरता से मत ले लेना। गंभीरता एक रोग है, एक बीमारी है। जिंदगी को हंसते हुए लेना। और हंसते हुए जिंदगी को वही ले सकता है जिसे कहीं नहीं पहुंचना है। जिसे पहुंचने का सवाल ही नहीं। और सच बात तो यह है कि पहुंचना कहां है, जब परमात्मा भीतर है तो पहुंचना कहां है? और मंजिल क्या है? और लक्ष्य क्या है? पहुंचना है वहीं जहां हम हैं ही, इसलिए अब और कोई लक्ष्य की जरूरत नहीं। बस हम उसे जान लें जो हम हैं। उसे हम जान लें जहां हम हैं। और जीवन का लक्ष्य पूरा हो जाता है।

मेरी इन सारी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रमाण करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।